(19)

स्वयंसेवी संस्थाओं की

विजन-मिशन-रणनीति

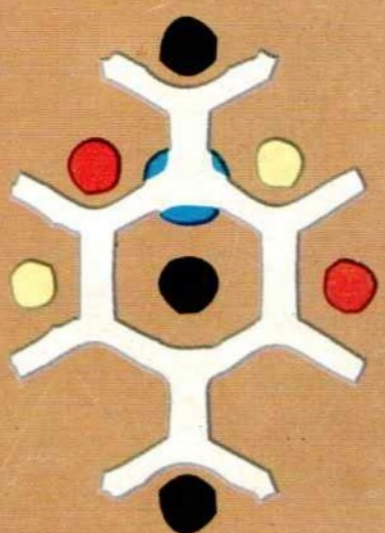

समर्थन–सेंटर फॉर डेवलपमेंट सपोर्ट भोपाल (म.प्र.)

प्रकाशक :

समर्थन सेन्टर फॉर डेवलपमेन्ट सपोर्ट
ई-7/81, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462016
फोन : (0755) 2467625, 5293147
ई-मेल : samarth_bpl@sancharnet.in

2004

मुद्रक : विश्वास ऑफसेट प्रिन्टर्स, भोपाल
फोन : (0755) 2533689

अपनी बात

हाल के वर्षों में स्वयंसेवी संस्थाओं ने सामाजिक विकास के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। समाज के उपेक्षित एवं पिछड़े वर्गों के जीवन में खुशहाली लाने की दिशा में किए गए इनके प्रयास आज हर जगह, खासकर सामान्य लोगों के बीच, अपनी पहचान बना रहे हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं की संख्या भी काफी बढ़ी है तथा इनकी उपस्थिति दूर–दराज के इलाकों में भी दृष्टिगोचर हो रही है। सरकार तथा कॉरपोरेट क्षेत्र के संस्थानों के साथ सम्बन्ध बनाकर काम करने के नये प्रयोग भी शुरू हुये हैं तथा उस दिशा में स्वयंसेवी संस्थाओं ने महत्वपूर्ण पहल की है। कुल मिलाकर नागर समाज के एक सक्रिय घटक के रूप में स्वयंसेवी जगत तेजी से उभर रहा है।

स्वयंसेवी संस्थाओं के समक्ष चुनौतियॉं भी कुछ कम नहीं है। बढ़ती संख्या एवं विस्तृत होते कार्यक्षेत्र के बीच, मूल्यहीनता एवं दिशाहीनता के आधार पर संस्थाओं की आलोचना भी स्वर ग्रहण कर रही हैं। कई बार मूल्य आधारित संस्थाऍं भी उचित जानकारी के अभाव एवं अपनी सोच को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत न कर पाने की कमजोरी के कारण इस आलोचना की सीमा में आ जाती हैं। आज जरूरत इस बात की है कि संस्थाऍं अपनी मूल्य आधारित पहचान को बनाने तथा बनाए रखने का सजग प्रयास करें। संस्था की पहचान बनाने में उसके विजन–मिशन–रणनीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। संस्था की पहचान इस बात से नहीं बनती है कि उसके पास कितने कार्यक्रम हैं और उसके पास कितने संसाधन हैं। संस्था तो मुख्यतः इस तथ्य से पहचानी जाती है कि उसके सपने क्या है, उसके लक्ष्य क्या हैं तथा उस लक्ष्य को प्राप्त करने की तत्परता, दिशा एवं रणनीति क्या है। इसके बाद ही कार्यक्रम एवं संसाधनों का दायरा देखा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तिका में संस्था के तीन आधारभूत तत्वों, यथा विजन (स्वप्न), मिशन (लक्ष्य) तथा रणनीति को परिभाषित करने तथा विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में उन्हें निर्मित करने के तरीकों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। नई विकसित हो रही स्वयंसेवी संस्थाओं को ध्यान में रखकर इस पुस्तिका को तैयार किया गया है। धीरे–धीरे बड़ी हो रही संस्थाओं के लिये भी यह पुस्तिका उतनी ही उपयोगी है क्योंकि वे अपने इतिहास में झॉंककर नए सिरे से अपनी रणनीति को व्यवस्थित करने में इसकी मदद ले सकती हैं। संस्था की ओर से इसे राकेश नाथ तिवारी ने लिखा है। आशा है यह प्रयास स्वयंसेवी संस्थाओं के लिये उपयोगी होगा। हमें अपने विचारों एवं सुझावों से अवगत कराइएगा।

योगेश कुमार

आभार

समर्थन अपने प्रारम्भ से ही मूल्य आधारित स्वयंसेवी प्रयासों की क्षमता वृद्धि एवं सहयोग के कार्य में लगा रहा है। क्षमता–वृद्धि के कार्य में व्यवस्थित ढंग से प्रशिक्षणों की श्रंखला चलायी जाती रही है, ताकि संस्थागत विकास एवं कार्यक्रम–प्रबंधन के क्षेत्र में नई सीख एवं कौशल के साथ ऐसे प्रयास संस्थागत स्वरूप ग्रहण कर समाज में प्रभावी योगदान दे सकें। विजन–मिशन–रणनीति हमेशा संस्था निर्माण एवं विकास में रीढ़ का तत्व है और इसी कारण इस विषय पर प्रशिक्षण देना इस श्रंखला का प्रारंभिक कदम रहा है। पर इस विषय पर प्रशिक्षण सामग्री एवं पाठ्य–सामग्री का अभाव लगातार महसूस किया जाता रहा है, खासकर स्थानीय भाषा में। इस अभाव को दूर करने में अपना छोटा सा योगदान दर्ज करना इस पुस्तिका के लेखन का मुख्य उद्देश्य रहा है।

इस लेखन को पूरा करने में दिशा प्रदान करने तथा धैयपूर्वक हमारी गलतियों को सुधारते रहने के लिये हम डा. योगेश कुमार के प्रति आभारी हैं। इस अपेक्षाकृत नए विषय पर हमारी समझ बनाने तथा सोच को परिष्कृत करने में प्रिया, नई दिल्ली द्वारा आयोजित प्रशिक्षणों एवं इस दौरान डॉ. राजेश टण्डन जी से हुए से हुये संवादों ने इस पुस्तिका को स्वरूप प्रदान करने में बहुत मदद किया है। हम आपके अति आभारी हैं। मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ की संस्थाओं की सहभागिता से इस विषय पर समय–समय पर कार्यशालाएं आयोजित होती रही हैं। उस दौरान प्रतिभागियों ने जो विचार व्यक्त किए और जो प्रश्न खड़े किए वे इस पुस्तिका को सहेजने के कम में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। इन कार्यशालाओं में सकिय रूप से शामिल रहीं संस्थाओं के प्रति हम हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

इस कार्य को पूरा करने में समर्थन–टीम के साथियों ने भी बहुत सहयोग किया। अमित खरे के प्रशिक्षण के अनुभवों का उपयोग हमने किया। माया नायर तथा शेखर ने इसे व्यवस्थित कर सँवारकर आप तक पहुंचाने में अपना योगदान दिया। सबका आभार।

राकेश नाथ तिवारी

अनुक्रमणिका

क.		विषय	पृष्ठ
1.		**विजन–मिशन एवं संस्थागत रणनीति**	1
	1.1	विजन–मिशन और रणनीति की आवश्यकता	1
	1.2	संस्था का विजन	2
2.		**संस्था का मिशन**	8
	2.1	मिशन का तात्पर्य	8
	2.2	संस्था के संदर्भ में मिशन की उपयोगिता	11
	2.3	मिशन व्यापक हो या संकुचित	12
	2.4	विजन और मिशन का अंतर	13
	2.5	व्यवस्थित एवं साझा विजन–मिशन	14
3.		**संस्थागत रणनीति का निर्धारण**	17
	3.1	संस्थागत रणनीति का अर्थ	17
	3.2	रणनीति के विभिन्न स्वरूप	26
	3.3	बेहतर संस्थागत रणनीति कैसे बनायें ?	28
	3.4	रणनीति नियोजन	36

विजन–मिशन
एवं
संस्थागत रणनीति

1. विजन–मिशन एवं संस्थागत रणनीति

सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में स्वयंसेवी संस्थाओं का महत्व दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। ये संस्थाएं नागरिक समाज (सिविल सोसायटी) के विशिष्ट अंग के रूप में स्थापित होती जा रही हैं तथा समाज के दबे–कुचले वर्गों व महिलाओं के उत्थान में इनका योगदान तेजी से स्वीकार किया जा रहा है। ऐसी संस्था महज कुछ व्यक्तियों और कार्यकर्ताओं का समूह नहीं होती है। इनकी गतिविधियां बिना किसी आधार के हवा में संचालित नहीं होती हैं। किसी संस्था के कार्य करने के पीछे उसका एक सैद्धांतिक आधार होता है, उसके मूल्य होते है, उसके लक्ष्य होते हैं तथा उसके निहितार्थ व उद्देश्य होते हैं। बिना इसके जो संस्था गतिविधियों में संलग्न दिखती है, उसे हम मूल्य अथवा लक्ष्य–आधारित संस्था नहीं मान सकते हैं और ऐसी संस्था के दीर्घजीवी होने की आशा नहीं की जा सकती है। समाज में परिवर्तन के दृष्टिकोण से सिर्फ लक्ष्य आधारित संस्थाओं की ही गणना की जाती है। किसी संस्था के लक्ष्य किस प्रकार निर्धारित होते हैं, उसके पीछे सपना क्या होता है तथा उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए रणनीति किस प्रक्रिया से निर्धारित की जाती है यह सब जानना समझना उन संस्थाओं के लिए बहुत ही आवश्यक है जो अपने आप को व्यापक सामाजिक परिवर्तन में भागीदार मानती हैं।

1.1 विजन –मिशन और रणनीति की आवश्यकता

एक व्यक्ति के संदर्भ में यह माना जाता है कि उसके जीने का आधार उसका कोई न कोई एक सपना होता है, एक लक्ष्य होता है जिसको पाने की आशा में वह तमाम कोशिशें करता है तथा जीते रहता है। व्यक्ति उसी समय मृतप्राय हो जाता है जब उसका सपना लुप्त हो जाता है तथा सपने को प्राप्त करने की सारी आशा क्षीण हो जाती है। कहने का भाव यह है कि किसी को भी जीने के लिए जो तत्व उद्देश्य तथा दिशा प्रदान करते हैं वे हैं–स्वप्न, लक्ष्य तथा उसको प्राप्त करने के लिए रणनीति आधारित प्रयास।

संस्था का भी एक जीवन होता है एवं जीवन चक्र होता है। यह जीवन उतना ही लम्बा होगा तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए उतना ही उपयोगी हो सकेगा, जितना स्पष्ट होगा इसके होने का कारण तथा इसके प्रयासों की दिशा। किसी संस्था को इसके स्थापित होने का आधार देने वाले तथा इसके कार्यों को दिशा प्रदान करने वाले तीन ही तत्व हैं – इसका स्वप्न (विजन), इसका लक्ष्य (मिशन) तथा इस लक्ष्य को प्राप्त करने की रणनीति। तार्किक धरातल पर देखें तो बिना इन तत्वों के कोई संस्था अपने उद्देश्यों तथा गतिविधियों का निर्धारण ही नहीं कर पायेगी। स्वप्न से लक्ष्य, लक्ष्य से उद्देश्य तथा उद्देश्यों व लक्ष्य की पूर्ति के लिए व्यापक रणनीति बनाई जाती है। लक्ष्य व उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यापक रणनीति के तहत गतिविधियां चलाई जाती हैं। ये सभी तत्व आपस में जुड़े हुए हैं।

विजन–मिशन–रणनीति जैसे आधारभूत तत्वों पर समझ के अभाव में तथा संस्था के संदर्भ में इनका उचित ढंग से निर्माण न होने की दशा में संस्था का लंबे समय तक टिक पाना मुश्किल हो जाता है। यही कारण है कि आज के दौर में कई लक्ष्यहीन संस्थाएं अल्पायू में ही दम तोड़ती दिख जाती हैं।

संस्था में स्पष्ट और लिखित विजन–मिशन–रणनीति का होना एक और महत्वपूर्ण अर्थ में आवश्यक है। संस्था के जीवन में सिर्फ संस्थापक व प्रारंभ में जुड़े कार्यकर्ता ही नहीं होते हैं। कई लोग इससे बाद में जुडते रहते हैं। कई बार संस्था का स्वप्न, लक्ष्य तथा रणनीति संस्थापक तक ही सीमित रह जाता है। यह संस्थापक तथा प्रारंभिक कार्यकर्ताओं के मन में कितना भी स्पष्ट क्यों न हो, अलिखित रह जाता है तथा दस्तावेज के रूप में संग्रहित नहीं हो पाता है। बाद में जुड़ने वाले कार्यकर्ताओं के संदर्भ में हम पाते हैं कि ये नये कार्यकर्ता सीधे–सीधे संस्था के कार्यक्रमों से जुड़ जाते हैं, न कि संस्था की सोच व स्वप्न से। संस्था में नए कार्यक्रम आते हैं तो नए कार्यकर्ता भी आते हैं। परन्तु संस्था में विजन–मिशन न रहने पर उनका परिचय संस्था के वृहद लक्ष्य तथा रणनीति से नहीं हो पाता है। फल यह होता है कि कार्यकर्ता अपनी व्यक्तिगत सोच को महत्व देने लग जाता है और संस्था के कार्यक्रम की दिशा ही बदल जाती है। संस्था में स्पष्ट स्वप्न, लक्ष्य तथा रणनीति होने की दशा में नया कार्यकर्ता जुड़ने से पहले ही यह विश्लेषण कर सकता है कि उसकी अपनी व्यक्तिगत सोच संस्था की सोच से मेल खाती है अथवा नहीं। यदि दोनों का मेल होता है, तभी नया व्यक्ति संस्था से जुड़ पाता है। इस प्रकार जुड़ने वाला व्यक्ति संस्था की व्यापक सोच में शामिल हो जाता है तथा संस्था के लक्ष्य को हासिल करने में मददगार सिद्ध होता है।

संस्था के संस्थापकों के न रहने पर संस्था का स्वप्न, लक्ष्य व रणनीति कहीं गुम न हो जाए इसके लिए संस्था में न सिर्फ स्पष्ट रूप से इनका निर्माण होना चाहिए बल्कि इनका दस्तावेज भी तैयार होना चाहिए ताकि इसके ऊपर संस्था के भीतर विचार–विमर्श की प्रकिया चलती रहे तथा सामूहिक समझ बनाई जा सके। संस्था में इसका स्वप्न, लक्ष्य संस्था के जितने ही ज्यादा लोगों को स्पष्ट रहता है, संस्था उतनी ही ज्यादा सशक्त होती है।

संस्था की रणनीति के संदर्भ में भी उपरोक्त बातें ही लागू होती हैं। कहा तो यहां तक जाता है कि संस्था की सफलता में इससे ज्यादा महत्वपूर्ण बात कोई हो ही नहीं सकती है कि संस्था की एक स्पष्ट व प्रभावी रणनीति हो और जिस पर संस्था के सभी लोगों की समझ हो तथा सभी उसी के अनुसार कार्य करते हों। एक बेहतर रणनीति ही यह तय कर सकती है कि संस्था के लक्ष्य को सीमित साधनों के उपयोग से किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।

1.2 संस्था का विजन (स्वप्न)

प्रत्येक संस्था जब प्रारंभ होती है तो उसे स्थापित करने के पीछे एक सपना होता है। संस्था इस सोच

के साथ खड़ी होती है कि समाज की कुछ अवांछित स्थितियों में परिवर्तन किया जाए ताकि एक ऐसे समाज की स्थापना में योगदान हो सके जिसकी कल्पना संस्था व इसके संस्थापकों ने की है। संस्था के कुछ मूल्य होते हैं जो उसे उसके सपने से जोडते हैं। संस्था का स्वप्न कई बार तो इसके संस्थापक के व्यापक सामाजिक चिंतन एवं व्यक्तिगत रूप से देखे गए सपने का विस्तार होता है पर कई बार कई लोग एक साथ जुडकर प्रारंभिक रूप से संस्था की नींव रखते हैं तथा ऐसी स्थिति में उनका साझा सपना संस्थागत स्वरूप ग्रहण करता है। कहने का भाव यह कि कई कारकों जैसे सामाजिक–राजनैतिक संदर्भ, संस्थापकों के पूर्वानुभव तथा मूल्यों के मेल से संस्था के विजन का निर्माण होता है।

संस्था समय के साथ जब बडी होती है तो उसे कार्यक्षेत्र की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि में कई तरह के नए–नए कार्यक्रम संचालित करने के अवसर आते हैं। कई बार यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि ये नए कार्यक्रम लिए जाएं अथवा नहीं। देखना पड़ता है कि वे संस्था की मूल सोच व सपने से मेल खाते है अथवा नहीं। ऐसी स्थिति में या तो विजन पर पुनर्विचार की आवश्यकता पड़ जाती है या नई गतिविधियों से जुडने के औचित्य पर ही। बहुधा ऐसी स्थिति में उन नई गतिविधियों से न जुडने का फैसला किया जाता है जो सपने से मेल नहीं खाती।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि संस्था के विजन का क्या अर्थ है, विजन निर्माण में कौन–कौन से तत्व आवश्यक रूप से योगदान करते हैं तथा संस्था का विजन किस प्रकार से संस्था को प्रभावी बनाए रखने में मददगार सिद्ध होता है।

1.2.1 विजन का तात्पर्य

विजन एक अंग्रेजी शब्द है जिसका सीधा शब्दार्थ है – स्वप्न।
महापुरूषों को स्वप्नदर्शी या विजनरी कहा जाता है क्योंकि वे अपनी सोच से एक आदर्श समाज की कल्पना करते हैं तथा उसी को प्राप्त करने के लिए जीते हैं। विजन को हमेशा सामाजिक संदर्भ में समझा जाता है, अतः संस्था के परिप्रेक्ष्य में इसे सामाजिक–विजन की संज्ञा दी जाती है।

संस्था के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि विजन संस्था की वह सोच है जो यह बतलाती है कि संस्था दुनिया अथवा समाज को किस रूप में देखना चाहती है। विजन यह भी प्रदर्शित करता है कि वर्तमान का जो अवांछित सत्य है उसकी तुलना में संस्था किस नई सच्चाई को स्थापित करने की आशा करती है। विजन उन आदर्शों एवं परिकल्पनाओं की अभिव्यक्ति है जिसे संभवतः कई पीढ़ियां मिलकर प्राप्त करने की आशा करेंगी।

संस्था के विजन को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं :–
"एक ऐसी आदर्श स्थिति जिसे संस्था के सभी सदस्य प्राप्त करने की आशा करते हैं तथा जिसके लिए

कार्य करते हैं। उस आदर्श स्थिति की परिकल्पना में सभी भागीदार होते हैं। यह आदर्श स्थिति वर्तमान की सच्चाईयों को बदलकर एक नई सच्चाई की स्थापना की परिकल्पना करता है।"

इस आदर्श स्थिति को प्राप्त करना संस्था के लिए बहुत दूर का लक्ष्य होता है जिसे संस्था शायद अपने अकेले प्रयासों से प्राप्त न कर पाए। यह सपना बहुत व्यापक होता है जिसमें बहुत सारी संस्थाओं के आदर्श समाहित हो सकते हैं। अतः बहुत सारी संस्थाओं के विजन एक ही तरह के हो सकते हैं। परन्तु अपनी संस्था का स्पष्ट विजन होना, संस्था के लिए काफी महत्व रखता है क्योंकि वही आदर्श वाक्य संस्था से जुड़े सभी व्यक्तियों को वांछित दिशा में कार्य करते रहने के लिए उत्प्रेरित करता है। संस्था का विजन उसके लिए प्राण–वायु की तरह है जो संस्था को जीवन शक्ति प्रदान करते रहती है। भिन्न–भिन्न सोच व मुद्दों पर कार्य करने वाली संस्थाओं के विजन में भिन्नता भी दिखती है परन्तु समान सोच व मुद्दे पर काम करने वाली संस्थाओं के विजन में समानता हो सकती है। कुल मिलाकर विजन इतना व्यापक होता है कि एक तरह की सोच वाली तमाम संस्थाओं तथा उनसे जुड़ने वाले व्यक्तियों के सपने उसमें समाहित हो सकते हैं।"

1.2.2 सामाजिक विजन के कुछ उदाहरण

1. स्वास्थ्य को प्रमुख मुद्दा मानने वाली तथा इसे अपनी सोच में केन्द्रीय स्थान देने वाली संस्था का विजन इस प्रकार हो सकता है – "एक ऐसे शोषणविहीन समाज की स्थापना जहाँ हर व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ हो।"
2. स्त्री–पुरूष समानता को मूल्य प्रदान करने वाली संस्था का विजन इस प्रकार लिखा हुआ हो सकता है– "एक ऐसे समाज की स्थापना जिसमें लिंग आधारित भेदभाव न हो तथा जिसमें महिला और पुरूष समान रूप से निर्णय लेने में भागीदारी करते हों।

3. इसी प्रकार एक सहयोगी संस्था का विजन इस प्रकार हो सकता है :–
   "एक ऐसे समाज की स्थापना जिसमें सूचनाओं तक सबकी पहुंच हो तथा जिसके आधार पर सभी को समान अवसर प्राप्त हो।"

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है होता कि ऐसे स्वप्न (विजन) एक आदर्श स्थिति को प्रस्तुत करते हैं जिनको सामने रखकर संस्था अपना लक्ष्य तथा रणनीति तय कर सकती है।

उपरोक्त उदाहरणों को देखने से यह भी पता चलता है कि विजन एक दूर के सपने की तरह है जो संस्था को सबसे अंतिम लक्ष्य के रूप में प्राप्त हो सकता है। इनको प्राप्त करने में सिर्फ एक अकेली संस्था का कार्य ही काफी नहीं है बल्कि एक ही विजन की ओर बहुत सारी संस्थाएं अपनी–अपनी ढंग से कार्य कर रही हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि प्रत्येक विजन का एक मूल्यात्मक आधार (Value base) होता है। विजन में समान भागीदारी, भेदभाव रहित, न्याय पर आधारित अथवा समान अवसरों पर आधारित समाज जैसे मूल्यों का समावेश किया जाता है।

विजन हमेशा स्पष्ट तथा संक्षेप में वर्णित होता है तथा उस ओर ईशारा करता है जिस ओर संस्था तथा इसके सदस्यों को कार्य करना होता है।

1.2.3 विजन–निर्माण के तत्व

विजन (स्वप्न) के निर्माण में एक मूल तत्व है जिसे हम मूल्य (Value) कह सकते हैं। हर व्यक्ति के व्यक्तिगत मूल्य होते हैं जिसके परिप्रेक्ष्य में वह एक आदर्श स्थिति की कल्पना करता है। ये मूल्य कई तत्वों के मेल से बनते हैं जैसे :–

1. सामाजिक– राजनैतिक वातावरण
2. अनुभव
3. पारिवारिक मान्यताएँ
4. सांस्कृतिक परंपराएँ
5. वैचारिक दृष्टिकोण

अपने व्यक्तिगत मूल्यों के आधार पर हर व्यक्ति का एक सपना होता है। जैसे – "उस समाज का निर्माण जो शोषणविहीन, लिंगभेद रहित और समता पर आधारित हो" या "वह समाज जो जीवन–जीने के संसाधनों से परिपूर्ण हो" इत्यादि। जब व्यक्ति को अपने मूल्यों के विरूद्ध समाज में घटित होता हुआ कुछ दिखता है तो उसे तकलीफ होती है और वह अपने सपने के अनुसार समाज को बनाने की दिशा में प्रयत्न करता है। इस सपने को साकार करने के लिए समान मूल्य रखने वाले लोगों के साथ मिलकर व्यक्तिगत मूल्यों को सामाजिक मूल्यों में परिवर्तित करने की प्रक्रिया चल पड़ती है ताकि सपने को साकार किया जा सके। विजन–निर्माण में शामिल प्रमुख तत्वों के सह – सम्बन्ध को इस प्रकार दिखलाया जा सकता है :–

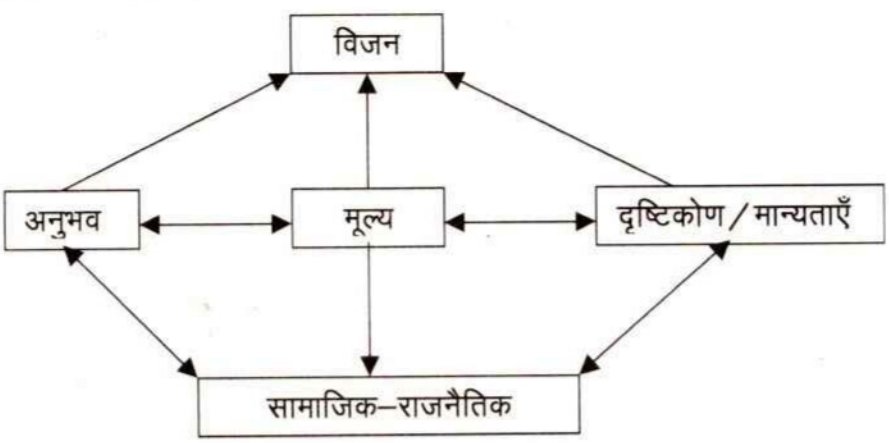

व्यक्तिगत मूल्य संस्थागत स्वरूप लें इसके लिए आवश्यक है कि जिन मूल्यों के आधार पर विजन का निर्माण किया गया है उनकी स्पष्ट रूप से व्याख्या की जाए ताकि संस्था से जुड़ने वाले नए लोग यह तय कर सकें कि वे भी उन मूल्यों में विश्वास करते हैं या नहीं। ये मूल्य प्रेरणादायी भी होने चाहिए ताकि समान विचार रखने वाले बहुत सारे लोग प्रेरणा प्राप्त करके संस्था से जुड़ सकें। मूल्य बार–बार बदलते नहीं। इन मूल्यों का संस्था की संस्कृति निर्मित करने में बहुत बड़ा योगदान होता है। अतः संस्था के भीतर इन मूल्यों तथा उनसे जुड़े विजन पर समय–समय पर चर्चा होती रहनी चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग इससे जुड़ते रहें।

1.2.4 विजन की विशेषताएँ

एक अच्छे विजन– वाक्य या कथन का संस्था के संदर्भ में प्रेरणादायी महत्व होता है। अतः विजन के कथन की निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए –

स्पष्ट तथा संक्षिप्त : एक अच्छा विजन वह होता है जो स्पष्ट तथा संक्षिप्त होने के साथ – साथ इस प्रकार वर्णित होता है कि वह लोगों को आसानी से समझ में आ जाए।

यादशात में रहने योग्य : विजन इस प्रकार का होना चाहिए कि आसानी से स्मरण में बना रह सके तथा उसे याद रखने के लिए विशेष कोशिश न करनी पड़े।

उत्प्रेरक : विजन तभी कारगार होता है जब वह स्वयं ही लोगों को उत्प्रेरित करे, उत्तेजित करे कि सपने को प्राप्त करने की ओर बढ़ना है।

लोगों को जोड़ने वाला : विजन की यह विशेषता होनी चाहिए कि वह ज्यादा से ज्यादा लोगों को ज्यादा से ज्यादा समय तक जोड़े रख सके। बहुत सारे लोग जब संस्थागत विजन में अपने व्यक्तिगत सपने को भी समाहित महसूस करते हैं, तभी संस्था का सपना साकार होता है।

चुनौती प्रस्तुत करने वाला : एक विजन एक चुनौती प्रस्तुत करता है ताकि उस विजन से जुड़े लोग उसे प्राप्त करने की कोशिश करें। यह एक दूरगामी चुनौती है, अतः लम्बे समय तक संस्था के सदस्यों के सामने बनी रहतीहै।

प्राप्य होने का भाव : विजन बिल्कुल ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि जिससे यह लगे कि ऐसा कभी प्राप्त ही नहीं हो सकता है। विजन तो ऐसा होना चाहिए कि लगे कि समय जरूर लगेगा पर ऐसा समाज होना संभव है। तभी विजन उत्प्रेरक हो सकेगा अन्यथा लोगों में निराशा पैदा कर देगा।

दिशा – निर्देशक : विजन तो संस्था के लिए पथ प्रर्दशक की भूमिका निभाता है। अतः विजन में उन तत्वों का समावेश होना चाहिए जिससे पता चलता रहे कि संस्था को किस ओर जाना है, किस ओर नहीं।

स्थायी परन्तु लोचदार : विजन तुरन्त तुरन्त बदलने वाला नहीं होता बल्कि व्यापकता के साथ साथ स्थायीत्व का गुण भी इसमें होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विजन को बदला नहीं जा सकता है। विजन को बदलने के अवसर संस्थाओं के जीवन में कभी कभार ही आ पाते हैं। विजन को इस तरह लोचदार होना चाहिए कि थोड़े बहुत परिवर्तन का समावेश करता हुआ यह अपनी प्रासंगिकता बनाए रखे।

क्रियान्वयन योग्य तथा माप्य : विजन इस प्रकार का होना चाहिए कि इसके आधार पर क्रियान्वयन योग्य लक्ष्य निर्धारित किए जा सकें तथा जिसके प्रभाव को मापा जा सके। विजन को कोई हवाई सपना नहीं होना चाहिए बल्कि ऐसा सपना होना चाहिए जिसे प्राप्त करने की दिशा में ठोस लक्ष्य तथा कदम निर्धारित किए जा सकें तथा उसके परिणामों को ठीक–ठीक जाना जा सके।

अतः संस्था का विजन निर्धारित करते समय विजन की उपरोक्त विशेषताओं का ख्याल रखना आवश्यक होगा। तभी कोई संस्था अपने एक सार्थक विजन वाक्य का निर्धारण कर सकती है जिससे संस्था के सभी सदस्यों को हमेशा प्रेरणा प्राप्त होती रहे।

1.2.5 संस्था में साझा स्वप्न (Shared Vision) की प्रासंगिकता

संस्था के भीतर संस्था के विजन पर सभी सदस्यों की आपसी समझ बहुत आवश्यक है। यदि संस्था के कार्यकर्ता विजन से जुड़ा महसूस नहीं करेंगे तो वे महज गतिविधियों से जुड़कर रह जायेंगे तथा समय के साथ–साथ एक उत्प्रेरक तत्व के अभाव में हतोत्साहित होते जायेंगे।

विजन उत्प्रेरक होता है। यदि संस्था के सभी लोग एक ही दिशा में एक ही सपने की ओर प्रेरित होकर कार्य कर रहे हों, तभी उस सपने को साकार किया जा सकता है। लोग इस बात में बड़ा आत्मसम्मान महसूस करते हैं कि वे उस विजन से जुड़े हुए हैं जो उनको अपने कैरियर तथा परिवार के दायरे से बाहर ले जाकर व्यापक, सामाजिक हितों से जोड़ता है। इस व्यक्तिगत उत्प्रेरणा को एक साझा विजन के माध्यम से ही सम्मिलित आकार प्रदान किया जा सकता है।

समाज की वर्तमान सच्चाईयों के परिप्रेक्ष्य में भविष्य के सपने का परिदृश्य एक रचनात्मक तनाव पैदा करता है जिसे विजन ही हल करता है क्योंकि यही एक दिशा–निर्देशक की भूमिका निभाता है तथा उस केन्द्र बिन्दु की ओर ईशारा करता है जिस ओर लक्ष्य बनाया जाता है तथा गतिविधियां चलाई जाती हैं।

संस्था का मिशन

2. संस्था का मिशन

मिशन–परक यानि मिशन पर आधारित संस्थाओं की ही एक संस्था के रूप में पहचान बनती है, अन्य की नहीं। मिशन ही वह तत्व है जो संस्था को उसकी पहचान दिलाता है तथा समाज में उसके औचित्य को सिद्ध करता है। बिना मिशन की संस्थाएं उस बिना पेंदी के लोटे की तरह हैं जो लक्ष्यहीन–सी इधर–उधर भटकती रहती हैं तथा जल्द ही अपना अस्तित्व खो देती हैं। मिशन विहीन संस्थाएं सामाजिक परिवर्तन की दिशा में उल्लेखनीय योगदान नहीं दे पाती हैं। सच कहा जाए तो इनकी गिनती तो संस्थाओं की सूची में की ही नहीं जाती है।

समाज में व्यापक परिवर्तन के दृष्टिकोण से गंभीर प्रयास करने के लिए यह आवश्यक है कि संस्थाएँ अपना एक स्पष्ट मिशन यानि लक्ष्य तय करें ताकि दृढ़ता व संकल्प के साथ उसे प्राप्त करने की दिशा में बढा जा सके। संस्था का विजन (सपना) तो बहुत व्यापक होता है और एक ही सपने के बहुत सारे साझेदार होते हैं यानि बहुत सारी संस्थाओं को मिलाकर एक ही साझा सपना हो सकता है। परन्तु प्रत्येक संस्था का मिशन अलग होता है जो प्रत्येक संस्था को अपनी अलग–अलग पहचान देता है। संस्थाएं अपने मिशन को प्राप्त करने के लिए कार्य करती हैं क्योंकि यही वह लक्ष्य होता है जो संस्था के जीवनकाल के दायरे में प्राप्त होने लायक होता है। संस्था अपने मिशन को प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार होती है। संस्था तो अपनी स्थापना का औचित्य अथवा कारण ही मिशन के आधार पर विश्लेषित करता है यानि संस्था का जीवन मिशन की प्राप्ति के लिए ही होता है।

संस्था के सदस्यों को आपस में बांधकर रखने वाला तत्व संस्था का मिशन ही होता है। सामान्यतः मिशन का निर्माण तो संस्था के भीतर संस्था के संस्थापक या संस्थापकगण ही करते हैं परन्तु संस्था के भीतर जितने ज्यादा लोगों की इसमें हिस्सेदारी बढ़ती है व इस पर समझ विकसित होती है, संस्था की आंतरिक संगठन शक्ति उतनी ही मजबूत होती जाती है तथा लोग उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरित होते हैं।

2.1. मिशन (लक्ष्य) का तात्पर्य

मिशन एक अंग्रेजी शब्द है जिसका हिन्दी शब्दार्थ है – लक्ष्य।
हम लोग किसी प्रमुख व्यक्ति या संस्था के संदर्भ में अक्सर एक शब्द सुनते हैं – 'मिशनरी' । मिशनरी वही होता है जिसके बारे में यह धारणा बनती है तथा जिसकी इस रूप में पहचान बनती है कि वह लगातार एक लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अपना सारा जीवन लगा देता है। यह मिशनरी शब्द मूलतः मिशन से ही बना है।

संस्था के परिप्रेक्ष्य में मिशन वह लक्ष्य है जिसके लिए संस्था का गठन होता है और संस्था जीवित रहती है। यह मिशन हमेशा संस्था के व्यापक विजन (सपने) के दायरे में होता है जो यह परिलक्षित करता है कि सपना का कौन सा भाग किस प्रकार से संस्था पूरा करना चाहती है। दूसरे शब्दों में, मिशन यह वर्णित करता है कि व्यापक सामाजिक स्वप्न को पूरा करने में संस्था का कैसा अथवा किस प्रकार का योगदान होगा।

सरल रूप में यह कहा जा सकता है कि मिशन यह स्पष्ट करता है कि किस वर्ग अथवा लक्ष्य समूह के साथ कार्य करना है तथा उनको कौन सी सेवायें प्रदान करनी हैं। इस प्रकार मिशन मूलतः दो प्रश्नों का उत्तर देता है – पहला यह कि किस वर्ग या समूह को सेवा प्रदान की जानी है और दूसरा यह कि संस्था कौन सी सेवा प्रदान करेगी ? इसके अलावा, मिशन में सामान्यतः यह भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से झलकता है कि संस्था के मूल मूल्य क्या हैं।

मिशन को उदाहरण स्वरूप निम्न प्रकार से समझा जा सकता है –
एक संस्था जिसका विजन है : "एक ऐसे समाज की स्थापना जहां महिलाओं के विरूद्ध किसी प्रकार का भेदभाव न हो तथा स्त्री पुरूष समान रूप से निर्णयों में भागीदारी करते हों।"
इस **संस्था का मिशन** इस प्रकार हो सकता है :–

"ग्रामीण क्षेत्र की कमजोर वर्ग की महिलाओं को आर्थिक स्वावलम्बन के अवसर प्रदान करना ताकि उनके विचारों को अहमियत प्राप्त हो सके"।

इस उदाहरण में यह स्पष्ट हो रहा है कि संस्था ने अपने मिशन में यह वर्गीकृत कर लिया है कि वह अपने विजन को प्राप्त करने के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण क्षेत्र की उन महिलाओं के साथ कार्य करेगा जो कमजोर तबके की हैं तथा सेवा के रूप में उन्हें आर्थिक स्वावलम्बन के लिए अवसर उपलब्ध कराएगा। इस प्रकार मिशन के माध्यम से इस संस्था की अपनी पहचान स्थापित होती है जो स्पष्ट करती है कि संस्था किस वर्ग के साथ क्या करेगी। उपरोक्त मिशन में परोक्ष रूप से यह मूल्य भी दृष्टिगोचर हो रहा है कि संस्था स्त्री–पुरूष समानता में विश्वास करती है तथा इस परिप्रेक्ष्य में महिलाओं, खासकर कमजोर वर्ग की महिलाओं की पक्षधर है।

2.1.1 मिशन के कुछ और उदाहरण :

संस्था के मिशन का निर्धारण हमेशा उसके विजन के दायरे में ही होता है, अतः सभी उदाहरणों को विजन के साथ–साथ ही स्पष्टता से समझा जा सकता है।

1. **विजन** : "एक ऐसा समाज जहां सभी बच्चे स्वस्थ जन्म लेते हों"

मिशन : "गर्भवती महिलाओं को बच्चे के जन्म के पूर्व की सभी सूचनाएं तथा देखभाल के रूप में सहायता प्रदान करना ताकि स्वस्थ बच्चे के जन्म की संभावनाएं बढ़ सकें।"

2. **विजन** : " एक ऐसा समाज जहां कोई बच्चा सामान्य बिमारियों से असमय कालकवलित न होता हो।"

मिशन : "ग्रामीण क्षेत्रों में बाल मृत्युदर कम करने हेतु उनके लिए शुद्ध पेयजल तथा स्वच्छता सुविधाएं सुनिश्चित करना।"

3. **विजन** : "एक ऐसे समाज की स्थापना जिसमें सूचनाओं तक सबकी पहुंच हो तथा जिसके आधार पर सभी को समान अवसर प्राप्त हो।"

मिशन : "सहभागी विकास की प्रक्रियाओं को बढ़ावा देना तथा उन स्वैच्छिक प्रयासों को मजबूती प्रदान करना जो समाज के गरीब, दलित एवं उपेक्षित वर्गों के हित में कार्य करते हैं।

उपरोक्त सभी मिशन के कथनों को देखने से पता चलता है कि संस्था ने अपने विजन के संदर्भ में अपने कार्य के लिए विशेष लक्ष्य–समूह का निर्धारण किया है तथा उनके साथ क्या करना है यह भी स्पष्ट कर दिया है। यह मिशन ही संस्था का लक्ष्य होता है जिसे प्राप्त करना संस्था की जिम्मेदारी होती है।

2.1.2 एक ही विजन पर आधारित अलग–अलग मिशन के उदाहरण

सामाजिक विजन चूंकि बहुत व्यापक होता है, अतः कई संस्थाओं का विजन एक सा हो सकता है परन्तु उसी एक विजन के दायरे में संस्थाओं का मिशन अलग–अलग हो जाता है। यह मिशन ही संस्थाओं के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए :–

1. **विजन** : एक ऐसे समाज की स्थापना जहां लिंग आधारित भेदभाव न हो"

एक संस्था का मिशन : "ग्रामीण क्षेत्र की कमजोर वर्ग की महिलाओं को आर्थिक स्वावलम्बन के अवसर प्रदान करना।

दूसरी संस्था का मिशन : "महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना ताकि वे अपने अधिकारों की मांग कर सकें।"

2. **विजन** : "एक ऐसे समाज की स्थापना जहां कोई बच्चा सामान्य बीमारी का शिकार होकर मौत के गाल में नहीं जाता हो।"

एक संस्था का मिशन : "ग्रामीण इलाकों में महिलाओं व बच्चों को स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराकर बाल मृत्यु–दर को कम करना।"

दूसरी संस्था का मिशन : "ग्रामीण इलाकों में समुदाय को शुद्ध पेयजल एवं शौचालय की सुविधाएं प्रदान करना ताकि बाल मृत्यू–दर को कम किया जा सके।
इसी विजन के अंतर्गत एक तीसरी संस्था भी अपना मिशन तलाश सकती है।
तीसरी संस्था का मिशन : "उन आर्थिक परिस्थितियों में, जिसमें कुपोषण एवं बीमारियों को बढ़ावा मिलता है, परिवर्तन लाने के लिए सामुदायिक संगठन की प्रक्रियाओंको बढ़ावा देना।"

3. **विजन** : "एक ऐसे समाज की स्थापना जहां सूचनाओं तक सबकी पहुंच हो और इस आधार पर सभी को समान अवसर प्राप्त हो।"
एक संस्था का मिशन : "सहभागी विकास की प्रक्रियाओं को बढ़ावा देना तथा उन स्वैच्छिक प्रयासों को मजबूती प्रदान करना जो समाज के गरीब, दलित एवं उपेक्षित वर्गों के हित में कार्य करते हैं।"
दूसरी संस्था का मिशन : "नागरिकों के लिए सूचना का अधिकार सुनिश्चित कराना।"

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भले ही विजन में समानता हो परन्तु संस्थाओं का मिशन अलग–अलग होता है जो प्रत्येक संस्था को विशिष्टता प्रदान करता है। विजन को प्राप्त करने की पद्धति क्या होगी, यह मिशन से तय होता है। विजन को प्राप्त करने का तरीका प्रत्येक संस्था ने अपने लिए अलग अलग तय कर रखा है, अतः प्रत्येक संस्था एक–दूसरे से भिन्न नजर आती है। यह मिशन ही है जो संस्थाओं के बीच की भिन्नता को स्पष्ट करता है भले ही उनका विजन एक–समान हो। मिशन में भिन्नता का सबसे प्रमुख कारण होता है प्रत्येक संस्था द्वारा अपने सामाजिक और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य का अपने अपने ढंग से विश्लेषण करना। इसी विश्लेषण व समझ के आधार पर एक विजन होने के बावजूद संस्थाओं के मिशन बदल जाते हैं।

2.2 संस्था के संदर्भ में मिशन की उपयोगिता

किसी भी स्वयं सेवी संस्था के संदर्भ में मिशन वाक्य तीन तरह का कार्य करता है :

1. **सीमाएँ तय करना** : संस्था का मिशन संस्था के प्रोजेक्ट के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मिशन को ही केन्द्र बिन्दु मानकर किसी नए प्रयोग व नीतिगत निर्णय की प्रासंगिकता सिद्ध हो सकती है। मिशन यह तय कर देता है कि संस्था क्या करेगी तथा क्या नहीं करेगी। इस प्रकार संस्था के कार्यकलापों की सीमायें मिशन ही तय करता है। नए कार्यों को हाथ में लेने से पहले मिशन के संदर्भ में ही यह देखा जाता है कि वह नया कार्य अथवा गतिविधि संस्था के मिशन में फिट बैठती है अथवा नहीं। यदि नहीं तो उस कार्य में संस्था संलग्न नहीं होती है।

2. **उत्प्रेरक का कार्य** : विजन (स्वप्न) की तरह ही मिशन भी उत्प्रेरक का कार्य करता है। मिशन

लगातार उत्प्रेरित करता है क्योंकि संस्था का लक्ष्य यही होता है तथा संस्था यह जानती है कि मिशन को प्राप्त किया जा सकता है। मिशन से संस्था के स्टाफ, कार्यकारिणी सदस्य, स्वयंसेवी तथा दानदाता भी उत्प्रेरित होते हैं तथा संस्था के मूल्यों को आगे बढ़ाने में एकजुट होते हैं।

3. **मूल्यांकन का संदर्भ** : मिशन का कथन संस्था के लिए हमेशा मूल्यांकन का संदर्भ प्रस्तुत करता है। संस्था चूंकि अपने मिशन के प्रति ही जिम्मेदार होती है, अतः संस्था का मूल्यांकन मिशन की प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में ही होता है। संस्था अपने प्रत्येक कार्य का मूल्यांकन भी इसी अर्थ में करता है कि वह संस्था के मिशन से कितना मेल खाता है तथा मिशन को पूरा करने में इसका क्या योगदान रहा है। संस्था के भीतर इसके मिशन के ऊपर यदि सभी सदस्यों की साझा समझ बनती है तो यह संस्था के हित में होता है। साझा मिशन के माध्यम से सामूहिक प्रयास को एक समान दिशा प्राप्त होती है तथा सबकी ऊर्जा व संस्थागत संसाधनों का एक लक्ष्य की पूर्ति में बेहतर उपयोग हो पाता है। यदि लोगों के बीच एक साझा सपना (विजन) हो, परन्तु लक्ष्य (मिशन) न हो, तो भी सामूहिक प्रयास का अभाव हो जाता है क्योंकि मिशन के बिना लोग अपने–अपने ढंग से विजन तक पहुंचने का प्रयास करने लग जाते हैं। अतः यह संस्था का मिशन ही है जो लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरणा देता है तथा लोग यह समझ पाते हैं कि उनके कार्य का योगदान किस प्रकार से सपने को प्राप्त करने में हो रहा है।

सामान्यतः संस्था का मिशन संस्था के संस्थापकों द्वारा प्रारंभ में ही तय किया जाता है। परन्तु जैसे–जैसे समय बीतता है तथा संस्था कार्य करती रहती है, उसे कार्यक्षेत्र तथा लक्ष्य समूहों के साथ–साथ बदलते हुए सामाजिक–राजनैतिक परिप्रेक्ष्य का नया अनुभव होते रहता है। संस्था जिन वर्गों व समूहों के लिए कार्य करती है, उनकी जरूरतें भी बदलती रहती है तथा संस्था का मिशन तय करने में उनका योगदान भी विशेष अर्थ ग्रहण कर लेता है। ऐसी परिस्थितियों में मिशन का पुनर्मूल्यांकन भी संभव होता है जिसमें बदलते वातावरण एवं लक्ष्य समूहों की आवश्यकताओं को देखते हुए संस्था के मिशन को नए सिरे से परिभाषित किया जा सकता है। परन्तु मिशन को पूरी तरह से बदल डालना सामान्यतः नहीं होता जब तक संस्था के वातावरण में तथा विकास की समस्याओं पर संस्था के विश्लेषण के तरीके में जबरदस्त बदलाव नहीं आ जाता है। मिशन के पुनर्परीक्षण, पुनरावलोकन तथा थोड़े बहुत परिवर्तन से मिशन की प्रासंगिकता बनी रहती है। अक्सर सिर्फ रणनीति में बदलाव लाने से मिशन की उपयोगिता बनी रहती है, भले ही बाहरी वातावरण में कितना भी बड़ा परिवर्तन क्यों न हुआ तो ।

2.3 मिशन व्यापक (Broad) हो अथवा संकुचित (Narrow) ?

मिशन के निर्धारण अथवा पुनर्परीक्षण के समय यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता है कि मिशन के कथन को व्यापक होना चाहिए अथवा संकुचित। संकुचित मिशन को इस अर्थ में समझा जा सकता है कि कुछ संस्थाएं अपने मिशन में लक्ष्य समूह को ग्रामीण या शहरी के रूप में बांट देती हैं अथवा अपने

कार्य को इस प्रकार वर्गीकृत कर देती है कि उचित अवसर होने पर भी वे अपने दायरे से बाहर नहीं निकल सकती हैं। जबकि दूसरी ओर व्यापक मिशन की संस्थाएं, उदाहरण के लिए, अपने लक्ष्य–समूह का ग्रामीण व शहरी के रूप में विभाजन न करके तथा सेवा के रूप में क्षमता वृद्धि या जागरूकता जैसे शब्दों का उपयोग करके अपने मिशन को इतना व्यापक बनाए रखती हैं कि उसके अंतर्गत नई गतिविधियां आसानी से शामिल की जा सकती हैं तथा जिसमें बदलते हुए बाह्य वातावरण का आसानी से समावेश किया जा सकता है।

इस विषय पर सामान्य विचारधारा यही है कि थोडा व्यापक मिशन संकुचित मिशन की तुलना में संस्था के लिए ज्यादा सहायक सिद्ध हो सकता है। ऐसा इसलिए माना जाता है क्योंकि थोडे व्यापक मिशन से संस्था नये अवसरों का लाभ ले सकता है। इसका एक अन्य लाभ यह होता है कि स्वयं सेवी संस्थाओं को विभिन्न दानदाता संस्थाओं तक अपना दायरा फैलाने का अवसर मिल जाता है। लेकिन मिशन का जरूरत से ज्यादा व्यापक होना, संस्था के लिए नुकसानदेह हो सकता है क्योंकि तब इससे उत्प्रेरणा प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है और इस मिशन के आधार पर मूल्याकंन का कार्य भी मुश्किल हो जाता है। तुलनात्मक रूप से मिशन जितना ही व्यापक के बजाय संकुचित रूप से बनाया जाता है उतना ही इसके हितभागियों के बीच समझ का स्तर बढ़ता है और ऐसे मिशन के आधार पर मूल्यांकन करना अपेक्षाकृत सहज हो जाता है।

स्वयं सेवी संस्थाओं के लिए ध्यान देने की बात यही है कि उनका मिशन इतना व्यापक न हो जाए कि सपने की तरह दिखने लगे और इतना संकुचित भी न हो जाए कि संस्थाएं नए अवसरों और नए वातावरण को इसके अंदर व्यवस्थित ही न कर सकें। अतः व्यापकता एवं संकुचन का एक संतुलित मिश्रण मिशन को उपयोगी बना सकता है।

2.4 विजन और मिशन का अंतर

विजन और मिशन पर विस्तृत चर्चा के उपरांत यह आवश्यक हो जाता है कि इनके बीच के सूक्ष्म अंतर को समझ लिया जाए क्योंकि सामान्य तौर पर ये आपस में इतने जुड़े हुए हैं कि इनकी भिन्नताओं पर नजर डालना मुश्किल हो जाता है। मौटे तौर पर विजन और मिशन में वही अंतर है जो एक सपने तथा उस सपने को प्राप्त करने के लिए अपना कदम तय करने में है। इनके बीच के अंतर को इस प्रकार से समझा जा सकता है :–

विजन	मिशन
• स्वप्न की तरह व्यापक होता है। • सामाजिक परिप्रेक्ष्य में तय होता है, अतः समाज को कैसा देखना चाहते हैं ऐसी परिकल्पना प्रस्तुत करता है। • यह अंतिम एवं दूरगामी लक्ष्य होता है। • यह व्यक्तिगत स्तर पर उत्प्रेरित करता है। • मूल्यांकन का ठोस आधार नहीं होता। • विजन को परिवर्तित व पुनर्विवेचन करना मुश्किल होता है।	• ठोस एवं वर्गीकृत होता है। • संस्थागत परिप्रेक्ष्य में तय होता है अतः संस्था विजन को प्राप्त करने में क्या योगदान देगी इसको इंगित करता है। • यह प्राप्त होने लायक लक्ष्य है जिसकी पूर्ति हो जाने पर विजन की प्राप्ति में योगदान होता है। • सामूहिक प्रयासों के लिए ऊर्जा देने का कार्य करता है। • मूल्यांकन का ठोस आधार होता है। • मिशन को समय–समय पर नए ढंग से व्यवस्थित या बदला जा सकता है।

2.5. व्यवस्थित (Articulated) एवं साझा (Shared or lived) विजन–मिशन

विजन (स्वप्न) तथा मिशन (लक्ष्य) की सम्पूर्ण चर्चा के उपरांत यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक मूल्य आधारित संस्था का अपना एक लिखित या अलिखित, व्यवस्थित या अव्यवस्थित, साझा या गैर–साझा विजन–मिशन होता है। कई बार यह संस्था प्रमुख के दिलों–दिमाग में ही बना रह जाता है। कई बार उसका व्यवस्थित स्वरूप नहीं दिखता है, बस भावनाओं के स्तर पर दिख जाता है। कई बार संस्था के एकाध लोगों के बीच ही इसकी समझ बनी रह जाती है, साझी समझ का हिस्सा नहीं बन पाती। कुल मिलाकर इसके व्यवस्थित एवं साझे स्वरूप की चार स्थितियाँ हो सकती हैं, जो निम्नवत् प्रस्तुत की जा सकती हैं :–

व्यवस्थित (Articulated) विजन–मिशन

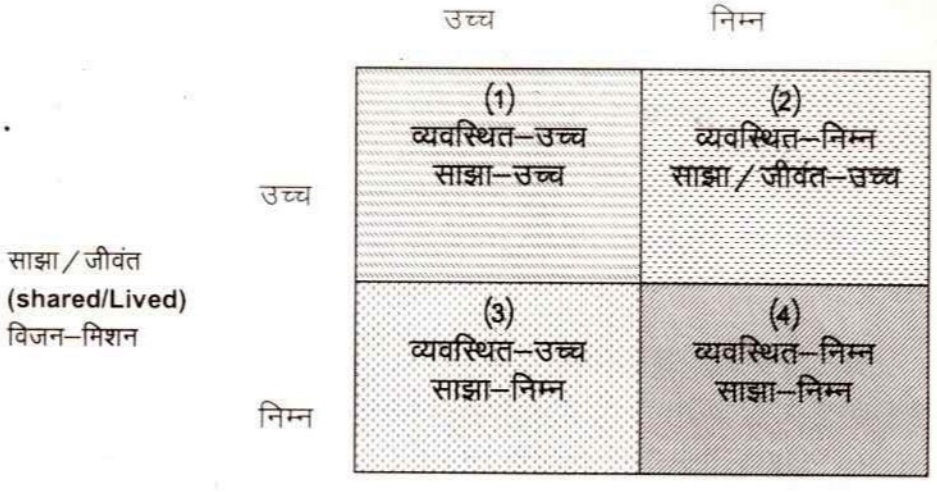

यहां व्यवस्थित (Articulated) का आशय है ऐसा विजन–मिशन जिसे सोच–समझकर तथा विश्लेषण के बाद तैयार किया गया हो तथा जिसमें स्पष्टता दिखाई पड़ रही हो। साझा / जीवंत (Shared/lived) का आशय है जिसे न सिर्फ बनाया गया हो बल्कि संस्था के सभी साथियों तथा उसके बाहर भी लोगों में बॉटा गया हो, तथा जिसे व्यापक रूप से जीवन में उतारकर प्रदर्शित किया जा रहा हो।

प्रथम एवं सबसे अनुकूल अवस्था वह है जिसमें संस्था का विजन–मिशन न सिर्फ ठीक से वर्णित है बल्कि उसे सबके साथ मिल–बांटकर जिया जाता है व उसे व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया जाता है इस प्रकार की संस्था सबसे खुली प्रकार की संस्था कही जा सकती है। इसमें संस्था के सभी कार्यकर्ताओं को यह ठीक–ठीक पता होता है कि उनकी संस्था का सपना एवं लक्ष्य क्या है तथा संस्था के सभी लोग पूरी सजगता से उसे व्यवहारिक जीवन में उतारने के प्रयास में लगे रहते हैं।

दूसरी प्रकार की संस्था वह है जिसमें विजन–मिशन को भले ही सोच–समझकर बनाया या लिखा तो नहीं गया है परन्तु अपने कार्य व्यवहार के जरिए यह प्रदर्शित हो जाता है कि संस्था का सपना तथा लक्ष्य क्या है। किसी व्यक्ति को उदाहरण के तौर पर लें तो विनोबा भावे तथा उनकी तरह के अन्य व्यक्ति इस बात के अच्छे उदाहरण हैं कि उन्होंने अपना सपना तथा लक्ष्य किसी को लिखकर तो नहीं बताया पर जिस प्रकार वे समाज में जिए, उसमें स्वतः ही सबकुछ स्पष्ट होता गया।

तीसरे प्रकार की संस्थायें वे हैं जिनमें विजन–मिशन को बहुत ही विश्लेषण एवं विचार–विमर्श के

उपरांत तैयार करके लिख तो लिया जाता है, परन्तु संस्था में अन्य सदस्यों को, लगातार नये जुड़ने वाले कार्यकर्ताओं को इसका ठीक–ठीक पता तक नहीं होता है। यह स्थिति संस्था के लिये बहुत उपयोगी नहीं होती। इस स्थिति से बचा जा सकता है यदि विजन–मिशन को लगातार अपने कार्यकर्ताओं तथा कार्यक्षेत्र में जुड़े लोगों तक पहुंचाया जाए तथा समय–समय पर उनके बीच इस नये सिरे से विश्लेषित किया जाये।

चौथी प्रकार की संस्थाएँ वे हैं जहाँ विजन–मिशन को न तो विश्लेषित कर कहीं लिखा या प्रस्तुत किया जाता है, न ही किसी प्रकार से उसे जीवंत स्वरूप ही प्रदान किया जाता है। ऐसी संस्थाएँ मूल्य–विहीन सी प्रतीत होती हैं।

उपरोक्त चर्चा के बाद यह समझना मुश्किल नहीं है कि संस्था के जीवन में विजन–मिशन का निर्धारण नींव तैयार करने के समान उपयोगी होता है। यदि इनकी स्पष्टता संस्था के भीतर नहीं बनती है तो संस्था की अपनी पहचान बननी मुश्किल हो जाती है तथा संस्था आधारहीन कार्यक्रमों को चलाने वाले ठेकेदार के सूरत में नजर आने लगती है। इस स्थिति से बचने के लिये संस्थाओं को न सिर्फ अपने विजन–मिशन को स्पष्टता से तैयार करने की जरूरत है बल्कि उसे अपने कार्यकर्ताओं तथा अन्य जुड़े लोगों के बीच मिल बांटकर जीने की भी आवश्यकता है।

इस सारे विवेचन से हम विजन–मिशन के सैद्धांतिक व व्यवहारिक भिन्नताओं को समझ सकते हैं तथा इससे अपनी अपनी संस्था के विजन–मिशन के निर्धारण व पुनर्विवेचन में मदद ले सकते हैं।
यह हमेशा ही ध्यान रखना होगा कि मिशन का निर्धारण संस्था के निर्माण व विकास में एक अति महत्वपूर्ण कड़ी है जो सपने को प्राप्त करने की दिशा में ठोस आधार प्रदान करता है। मिशन ही संस्था के अंदर सामूहिकता का भाव पैदा करता है। अतः एक स्पष्ट और उत्प्रेरक मिशन का निर्माण संस्था को विचारपूर्वक एवं सावधानी से करना चाहिए।

संस्थागत रणनीति
का
निर्धारण

3. संस्थागत रणनीति (Organisational Strategy) का निर्धारण

संस्था में विजन–मिशन के निर्धारण के उपरांत जो अगला महत्वपूर्ण चरण होता है, वह है रणनीति तैयार करना। हम जिस रणनीति की चर्चा यहाँ कर रहे हैं वह उस तात्कालिक रणनीति के संदर्भ में है जो संस्था के प्रारम्भ में उसके मिशन को प्राप्त करने के उद्देश्य से तय की जाती है। यहां हम लोग प्रारंभिक संस्थागत रणनीति के परिप्रेक्ष्य में ही समझ बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाओं को यह स्पष्ट रहता है कि उनका विजन (सपना) क्या है और वे किस प्रकार का समाज देखना चाहती है। बहुत सारी संस्थाओं को यह भी स्पष्ट रहता है कि उनकी संस्था क्यों स्थापित की गयी है यानि उनके होने का औचित्य किस लक्ष्य (मिशन) की प्राप्ति के लिये है। परन्तु बहुत कम संस्थाओं को यह स्पष्ट रहता है कि अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जाये तथा अपने संसाधनों को कैसे बेहतर ढंग से उपयोग में लाया जाए ताकि लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जाये। इसी प्रश्न का उत्तर रणनीति के माध्यम से प्राप्त होता है। यदि रणनीति सटीक रही तभी लक्ष्य को साधा जा सकता है अन्यथा संस्था अपने मानवीय व आर्थिक साधनों का ठीक प्रकार से उपयोग नहीं कर पायेगी और मिशन तक पहुंचना मुश्किल हो जायेगा।

रणनीति का व्यवस्थित उपयोग लगभग डेढ़ सौ सालों से विभिन्न देशों की सेना द्वारा किया जाता रहा है परन्तु रणनीति का सामान्य अर्थ में प्रयोग तो अपनी–अपनी विजय के लिये सेनाओं ने प्राचीनकाल से ही किया है। रणनीति शब्द में ही रण यानि युद्ध जुड़ हुआ है। जब लक्ष्य यह हो कि दुश्मन सेना को परास्त कर विजयी बनना है तो प्रत्येक सेना यह निश्चित करती है कि दुश्मन पर पहला आक्रमण कब और कहां करना है, बचाव कैसे करना है, सेना की कमान कौन संभालेगा, किस औजार का कब प्रयोग किया जायेगा, इत्यादि। कुल मिलकार लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जाए यह तय करना ही तो रणनीति है।

उद्योग और व्यवसाय जगत ने भी रणनीति का व्यवस्थित उपयोग लगभग 30 वर्ष पहले करना शुरू किया था। परन्तु सामाजिक क्षेत्र तथा स्वयंसेवी जगत में इसका उपयोग तो अभी लगभग 10 वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हुआ है। इस प्रकार देखा जाए तो यह अवधारणा व्यवस्थित रूप से सेना तथा उद्योग जगत से होता हुआ स्वयंसेवी क्षेत्र में उपयोग के लिये उपलब्ध हुआ है।

3.1 संस्थागत रणनीति का अर्थ

रणनीति वह अवधारणा है जो बड़े सटीक ढंग से संस्था के विजन–मिशन के अंतर्गत यह व्याख्या

करती है कि संस्था अपने सीमित संसाधनों का इस्तेमाल किस तरीके से करेगी ताकि बेहतर परिणाम प्राप्त किये जा सकें। एक प्रकार से रणनीति तो मिशन और उसकी सफलतापूर्वक प्राप्ति के बीच की एक कडी भी है जो मिशन को व्यवहारिक उद्देश्यों व योजनाओं से जोडती है। मिशन को प्राप्त करने में सफलता अथवा असफलता का होना मूलतः रणनीति पर निर्भर करता है।

विजन–मिशन रणनीति में अंतर्सम्बन्ध

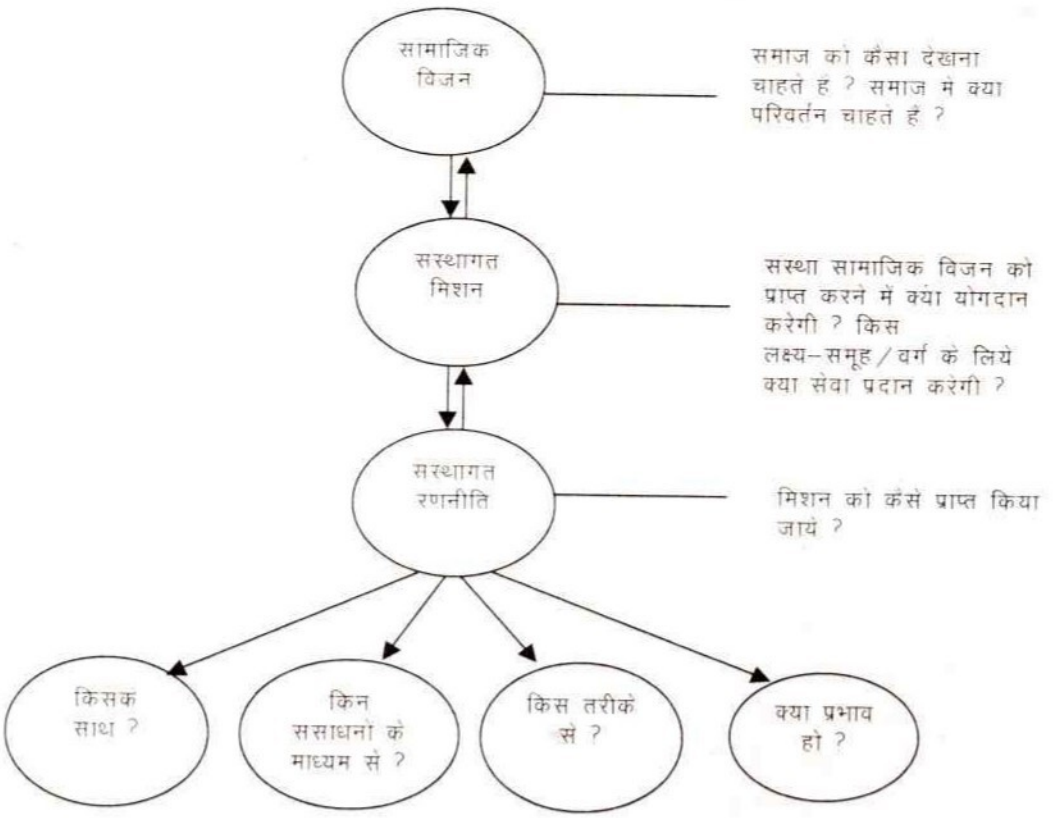

विजन–मिशन की समझ बनाते समय हम यह देख चुके हैं कि कई संस्थाओं के विजन में समानता हो सकती है यानि कई संस्थाओं का साझा स्वप्न हो सकता है। साथ ही हम यह भी देख चुके हैं कि मिशन के स्तर पर विभिन्न संस्थाओं के बीच अंतर हो जाता है यानि संस्थाओं की अपनी अलग–अलग पहचान उनके मिशन में भिन्नता होने के कारण बन जाती है। फिर भी ऐसा संभव हो सकता है कि दो या ज्यादा संस्थाओं के बीच मिशन के स्तर पर भी समानता हो। पर संस्थागत रणनीति के स्तर पर आते–आते तो अलग–अलग संस्थाओं की समान्यतः अलग–अलग रणनीति हो ही जाती है क्योंकि संस्थाएँ अलग–अलग ढंग से अपने आस–पास की समस्याओं का विश्लेषण करती है, अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्र चुनकर कार्य करती हैं, अलग–अलग लक्ष्य समूह तय करती हैं, उनके साथ अपने संबंधों का चरित्र निर्धारित करती हैं, उनके बीच काम करने के अलग–अलग तरीके निश्चित करती हैं तथा यह भी स्पष्ट करती हैं कि अपने किन सीमित संसाधनों का किस प्रकार उपयोग करेंगी। कुल

मिलाकर कहा जाय तो विकास से जुड़ी समस्याओं की संस्था द्वारा व्याख्या किया जाना, उनकी समस्याओं को दूर करने का तरीका निश्चित करना, लक्ष्य–समूह निर्धारित करना, भौगोलिक क्षेत्र चुनना तथा लक्ष्य समूह तथा अन्य हितभागियों के साथ संबंध का दायरा तय करना ही रणनीति निर्धारित करना कहा जा सकता है। उपरोक्त विषयों के उत्तर तलाशने के क्रम में संस्था यह विश्लेषित एवं परिभाषित करती है कि संस्था की पहचान क्या है, यह क्या करती है तथा वह जो कुछ भी करती है वह क्यों करती है। रणनीति एक प्रकार से संस्था के उद्देश्यों, नीतियों, कार्यक्रमों, निर्णयों एवं संसाधन वितरण के स्वरूप का एक पैटर्न है जो संस्था के मिशन एवं उसके आस–पास के वातावरण के बीच सेतू का कार्य करता है। रणनीति संस्था के सामने मूलभूत नीतियों के चयन का मामला है ताकि उन नीतियों का पालन करते हुए लक्ष्य को प्राप्त किया जाए। यदि उन नीतियों का समान रूप से पालन नहीं किया जाता और कहने व करने में अंतर बना रहता है तो ऐसी नीतियाँ असफल सिद्ध हो सकती हैं। अतः रणनीति की स्पष्ट व्याख्या अत्यावश्यक होती है। जरूरत पडने पर उन्हें पुनर्परिभाषित या पूरी तरह बदलना पड़ सकता है। स्वप्न और लक्ष्य की तुलना में रणनीतियाँ आसानी से परिवर्तनशील होती है और समय के साथ चलने वाली संस्थाएं समय–समय पर अपनी रणनीति की पुनर्परीक्षा करती रहती है तथा उनमें परिवर्तन करते रहती है।

रणनीति के माध्यम से संस्था निम्न प्रश्नों का उत्तर खोजती है –

- विकास से जुड़ी समस्या का चरित्र क्या है ? समस्या की व्याख्या संस्थाएँ अपने–अपने ढंग से करती हैं, जिससे उनकी रणनीति की दिशा तय होने लगती है।
- समस्या को दूर करने का तरीका क्या हो सकता है ?
- किसके साथ, किसके लिये, कहाँ–कहाँ और इन सबसे किन संबंधों के साथ काम किया जाये ?
- संस्था अपनी ताकतों का किस प्रकार उपयोग करे तथा अपनी कमजोरियों को किस प्रकार दूर करे ताकि लक्ष्य हासिल हो सके ?
- कौन से संसाधन कहां लगाए जायें ?

हर संस्था जब प्रारम्भ होती है तो उसकी प्रारम्भिक व तात्कालिक संस्थागत रणनीति भी होनी चाहिये। अक्सर यह होती भी है चाहे वह लिखित रूप में न हो। पर कुछ न कुछ तो नीतियाँ, तौर–तरीके, काम करने का प्रकार, दूसरे प्रभावी कारकों से संबंध रखने का निर्णय, सबकुछ किसी न किसी रूप में तय हुआ रहता है। जरा सोचिए कि यदि यह संस्था के स्तर पर तय न हो तो हर कार्यकर्ता अलग–अलग तरह से संस्था की भूमिका देखेगा तथा अलग–अलग प्रकार के हस्तक्षेप करता नजर आएगा। ऐसी स्थिति में लक्ष्य प्राप्ति की दिशा ही भ्रमित हो जायेगी।

किसी संस्था की रणनीतियाँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि उस संस्था की सोच में समाज परिवर्तन का सिद्धान्त क्या है, सामाजिक समस्या का उनका अपना विश्लेषण क्या है तथा संस्था के आस–पास का सामाजिक–राजनैतिक परिदृश्य क्या है। समस्या के विवेचन एवं सामाजिक परिवर्तन की अपनी सोच के आधार पर संस्था यह पहचान कर सकती है कि वह कौन सी गतिविधियाँ करे ताकि प्रभावी परिवर्तन हो सके तथा इन गतिविधियों को किस वर्ग के साथ किस स्थान पर केन्द्रित किया जाए। उदाहरणार्थ, किसी एक संस्था कि यह सोच हो सकती है परिवर्तन के लिये प्रशिक्षण ही सबसे कारगर

उपाय हो सकता है जबकि किसी दूसरी संस्था की सोच में यह हो सकता है कि जागरूकता अभियान ही परिवर्तन का वाहक हो सकता है। इस सोच से इन संस्थाओं की अपनी–अपनी रणनीति को दिशा मिलेगी। साथ में एक ही समस्या के परिप्रेक्ष्य में इस सोच के कारण दोनों संस्थाओं की रणनीति में अन्तर दिखलाई पड़ेगा।

संस्थाऐं हमेशा एक बाह्य वातावरण में काम करती हैं जिन पर उनका सीधा नियंत्रण नहीं होता। इस वातावरण में बहुत सारी चुनौतियॉ हैं जिसका सामना संस्था को करना पड़ता है। इन बाह्य चुनौतियों को ध्यान में रखकर ही संस्था को अपनी रणनीति विकसित करनी चाहिये क्योंकि रणनीति को ऐसा होना चाहिये कि वह इन बाह्य चुनौतियों का सामना कर सके तथा लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इसे ध्यान में रखे बिना सिर्फ अपनी सोच के आधार पर रणनीति विकसित करना संस्था के लिये अहितकर हो सकता है। साथ ही यह भी नोट करना महत्वपूर्ण है कि बाह्य वातावरण परिवर्तनशील है। यह भी संभव है कि संस्था की सोच तथा इसकी क्षमताऐं भी समय के साथ–साथ बदल जायें। बदली हुई परिस्थितियों में रणनीति को बदलते रहना जरूरी है अन्यथा वह अप्रासंगिक एवं महत्वहीन होकर रह जायेगी।

संस्था की सोच, क्षमताऐं–अक्षमतायें तथा बाह्य वातावरण की चुनौतियों व अवसरों को ध्यान में रखकर ही रणनीति संस्था के परिप्रेक्ष्य में इन विकल्पों के चयन के प्रति प्रेरित करती है :

क्या करना चाहिये ? – रणनीति यह तय करना सुनिश्चित करती है कि संस्था के लक्ष्य की पूर्ति में अपने सीमित संसाधनों (समय, लोग, धन, इत्यादि) को किस प्रकार तथा कहॉ लगाया जाये जहां वे प्रभावी परिणाम दे सके।

क्या नहीं करना चाहिये ? – रणनीति यह भी तय कर देती है कि क्या नहीं करना चाहिये या किस प्रकार की गतिविधियों में संस्था को हाथ नहीं लगाना चाहिये। इसे ध्यान रखना पड़ेगा कि ऐसी गतिविधियॉ न करें –

- जिसमें संस्था के मिशन से कोई मेल न हो।
- जिसमें उपलब्ध संसाधनों की तुलना में ज्यादा संसाधन खर्च होने की संभावना दिखती हो।
- जो टिकाऊ व स्थायी सिद्ध न हो सके।
- जो संस्था की मूल सोच तथा मुख्य काम से हटकर हो।
- जिससे किसी प्रकार का परिणाम निकलने की संभावना न हो।

अब तक की चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि संस्थाओं को अपने उद्देश्यों की पूर्ति में रणनीतिक ढंग से काम करना आवश्यक तत्व है। हर संस्था की अपनी–अपनी रणनीति होती भी है अंतर सिर्फ यही होता है कि कुछ की लिखित हो सकती है, कुछ की अलिखित। साथ ही यह भी हो सकता है कि रणनीति स्पष्ट न हो या प्रभावी न हो। आवश्यकता इस बात की है कि रणनीति के महत्व को समझते हुए संस्थाओं के पास प्रभावी रणनीति हो।

3.1.1 संस्थाओं की रणनीति के कुछ उदाहरण

किसी–किसी संस्था का कार्य समूह (constituency) कोई एक ही वर्ग होता है, किसी संस्था का कार्य–समूह बहुत तरह के वर्गों में फैला होता है, कोई संस्था अपने कार्य–समूह को एक ही प्रकार की सेवा प्रदान करती है, कोई संस्था अपने कार्य समूह को बहुत प्रकार से मदद करती है। इस तरह कई प्रकार की स्थितियॉ रणनीति के तौर पर दिखलाई पड़ सकती हैं। हम उदाहरण के तौर पर साधारण रणनीति से जटिल रणनीति की संस्थाओं को क्रमवार समझने का प्रयास करेंगे।

उदाहरण 1 – बच्चों की शिक्षा के लिये काम करने वाली एक संस्था की रणनीति

समस्या संदर्भ : बच्चे समाज के धरोधर हैं तथा इसके नींव निर्माण के तत्व वही हैं। यदि बच्चे अशिक्षित रहते हैं तो सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन के सभी क्षेत्रों में इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। समाज के पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के पिछड़ेपन के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारक शिक्षा की कमी होना ही है। यदि शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है तो जागरूक, समझदार तथा स्वस्थ समाज का निर्माण होता है।

कार्य–समूह (constituency) : समुदाय के गरीब व पिछड़े वर्गो के बच्चे जो सुदुर इलाकों में रहते हैं तथा जिनके बीच शिक्षा के साधन नहीं पहुंच पाये हैं।

भौगोलिक क्षेत्र : मध्यप्रदेश के शिवपुरी एवं ग्वालियर जिले के आदिवासी इलाके, खासकर वे जहॉ उनके गांव अभ्यारण्यों तथा संरक्षित वनों के बीच आ गये हैं।

हस्तक्षेप की रणनीति :

सेवा प्रदान करना : आदिवासी एवं पिछड़े वर्ग के लिये वैकल्पिक शिक्षा–केन्द्र खोलना तथा संचालित करना।

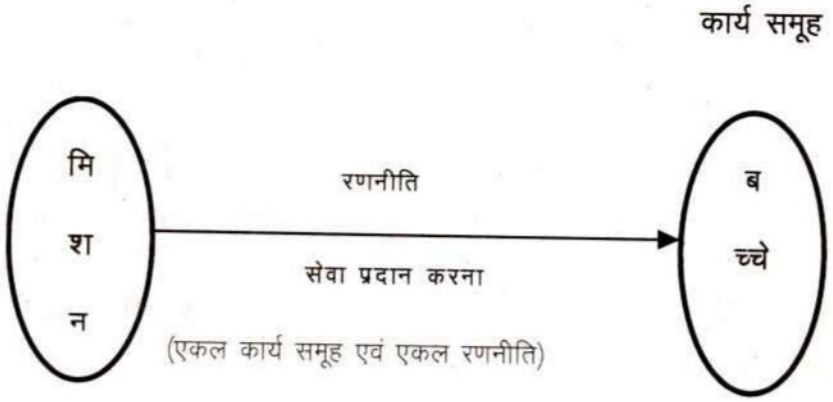

उदाहरण 2 : महिला–मुद्दों पर काम करने वाली एक संस्था की रणनीति

समस्या संदर्भ : समाज के वर्तमान स्वरूप में पुरूष–महिला में सामाजिक लिंग–भेद दिखाई पड़ता है। इस भेदभाव का शिकार विशेष रूप से महिलायें ही है। समाज ने तो उनके लिये भेदभाव पर आधारित काम तक निर्धारित कर रखा है। वे क्या करेंगी, क्या नहीं करेंगी यह सब पुरूष–प्रधान व्यवस्था तय करती है। यह स्थिति ठीक नहीं है। समाज में स्त्री–पुरूष समानता लाने के लिये आवश्यक है कि महिलायें स्वयं आगे आयें, आत्मनिभर बनें तथा अपने अधिकार हासिल करें।

कार्य समूह (constituency) : ग्रामीण क्षेत्र की महिलायें

भौगोलिक क्षेत्र : मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड–बघेलखण्ड क्षेत्र के जिले जहां अपेक्षाकृत रूप से सामंतवादी अवशेष जीवित हैं।

हस्तक्षेप की रणनीति

(क) संगठित करना : महिलाओं को समूह के रूप में संगठित करना।
(ख) नेटवर्क बनाना : महिला–समूहों के नेटवर्क खड़ा करना ताकि बड़े स्तर पर महिला मुद्दों पर आवाज उठाई जा सके।
(ग) जागरूकता : महिला–अधिकारों के प्रति जागरूक करना।
(घ) सेवाएं प्रदान करना : आर्थिक स्वावलम्बन के लिये तथा पीड़ित दशा में महिलाओं को सेवा प्रदान करना।

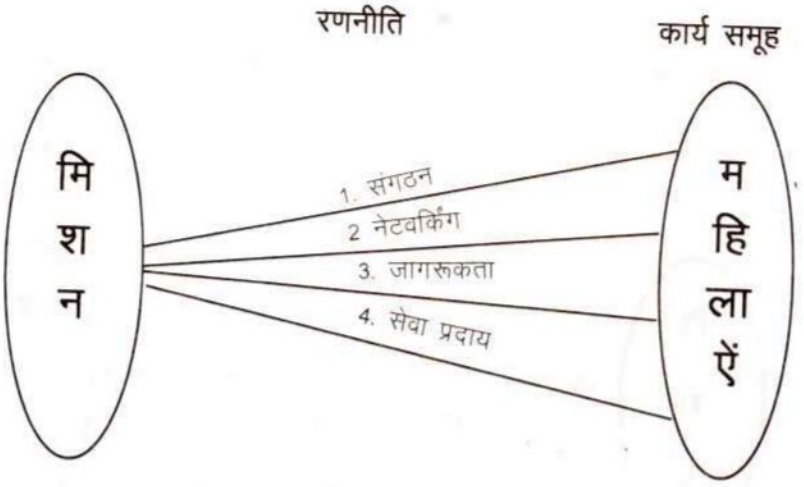

(एकल कार्य समूह एवं बहुल रणनीति)

उदाहरण–3 स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में काम करने वाली एक संस्था की रणनीति

समस्या सन्दर्भ : हमारे गांवों में गरीबी के पीछे सबसे बड़ा कारण स्वच्छता एवं स्वास्थ्य की समस्या है। गरीबी एवं स्वास्थ्य का गहरा अन्तर्सम्बन्ध है। अस्वच्छता एवं छोटी–छोटी रोकथाम योग्य बिमारियाँ भी गरीबों को बुरी तरह प्रभावित कर डालती हैं। गरीबों की रोजी–रोटी तो मारी ही जाती है, उनके नवजात बच्चे भी असमय कालकवलित हो जाते हैं। सरकार की मशीनरी का एक बड़ा हिस्सा स्वास्थ्य–सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये ही बना है। पर समाज के गरीब तबकों तक या तो ये सेवायें पहुंच नहीं पाती है या वे स्वयं भी इतने जागरूक नहीं है कि इन सेवाओं का लाभ उठा सकें। जरूरत है कि जीवन को हर तरह से प्रभावित करने वाले स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के मुद्दों के प्रति गरीब न सिर्फ जागरूक हों बल्कि सेवाओं को हासिल कर सकने में सक्षम बनें।

कार्य समूह (constituency) : ग्रामीण समाज के गरीब व पिछड़े वर्ग के लोग, खासकर महिलायें एवं बच्चे, जो अस्वस्थता के कारण सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

भौगोलिक क्षेत्र : मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र का पन्ना जिला।

हस्तक्षेप की रणनीति

(क) जागरूकता पैदा करना : समुदाय के लोगों को स्वच्छता एवं स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों के प्रति जागरूक करना।

(ख) संगठित करना : ग्राम स्तरीय संगठनों तथा महिला समूहों के रूप में लोगों, खासकर महिलाओं को एकजुट करना।

(ग) क्षमता वृद्धि : समूहों एवं संगठनों की इस रूप में क्षमतावृद्धि करना कि वे स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच बना सकें।

(घ) सेवाएँ प्रदान करना : कुछ अति आवश्यक सेवाएँ, यथा बीमार व गर्भवती महिला एवं बच्चों को स्वास्थ्य सुविधाएँ व दूर के अस्पताल तक पहुँचाने जैसी सेवाएँ प्रदान करना।

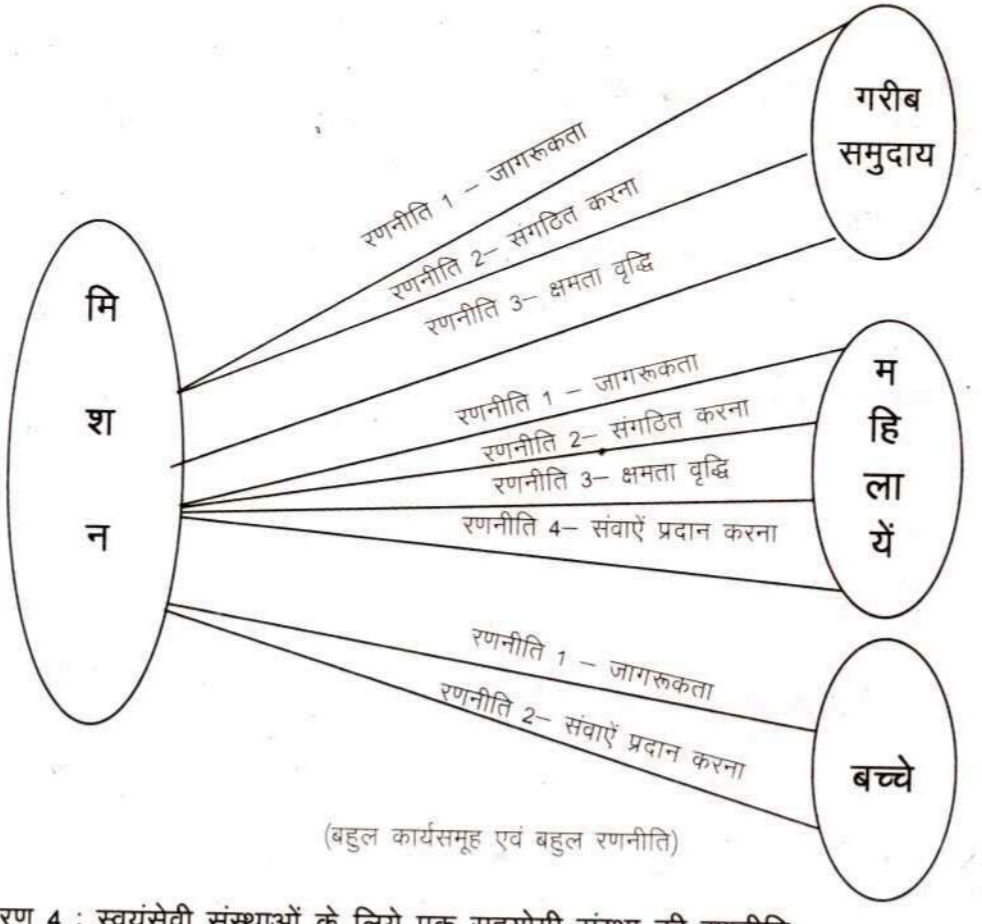

उदाहरण 4 : स्वयंसेवी संस्थाओं के लिये एक सहयोगी संस्था की रणनीति

समस्या संदर्भ : स्वयं सेवी संस्थाओं की विकास एवं समाज –निर्माण में भूमिका बढ़ती ही जा रही है। आज जीवन के हर क्षेत्र में अपना योगदान करने के लिये ऐसी संस्थाएँ निर्मित हो रही है। ग्रामीण एवं दूर–दराज के क्षेत्रों में भी स्वयंसेवी प्रयास खड़े हो रहे हैं तथा संस्थागत स्वरूप ग्रहण कर रहे हैं। ऐसे प्रयासों में लगी संस्थाओं में बहुत बड़ी संख्या मूल्य–आधारित संस्थाओं की है जो सामाजिक परिवर्तन व विकास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पर मानवीय व आर्थिक संसाधनों की कमी तथा संस्थागत व कार्यक्रम संबंधी बहुतायत मुद्दों पर अस्पष्टता व कम क्षमता होने के कारण ये संस्थाऐं प्रभावी रूप से कारगर नहीं हो पाती हैं। इन्हें समसामयिक एवं उपयोगी जानकारी तथा क्षमता प्रदान किये जाने की अति आवश्यकता है ताकि ये समाज के वंचित, गरीब व उपेक्षित लोगों के हित में योगदान कर सकें।

कार्य समूह : छोटी व मध्यम आकार की स्वयं सेवी संस्थाएं एवं सहभागी विकास की प्रक्रियाओं से जुडी एजेंसियां जिसमें सरकार भी शामिल है।

भौगोलिक कार्यक्षेत्र : मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़

हस्तक्षेप की रणनीति

(क) क्षमता–वृद्धि : संस्थागत विकास एवं कार्यक्रम–प्रबंधन के विभिन्न विषयों पर सहभागी पद्धतियों से स्वयंसेवी संस्थाओं एव संबद्ध एजेंसियों की क्षमता–वृद्धि

(ख) वित्तीय सहयोग : कार्यक्षेत्र स्थापित करने, प्रशिक्षण प्राप्त करने, संस्थागत निर्माण करने के लिये स्वयंसेवी संस्थाओं को आर्थिक सहयोग।

(ग) नीतिगत एडवोकेसी : स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सहभागी प्रक्रियाओं को स्थापित करने की दिशा में एडवोकेसी

(घ) ज्ञान–सृजन : कार्यक्षेत्र में सीधे हस्तक्षेप कर समाज के गरीब, दलित एवं उपेक्षित वर्गों के साथ मिलकर सामाजिक विकास की प्रक्रिया में नये ज्ञान का सृजन करना जिसका उपयोग अन्य संस्थाओं व जुड़े लोगों की क्षमता वृद्धि में किया जा सके।

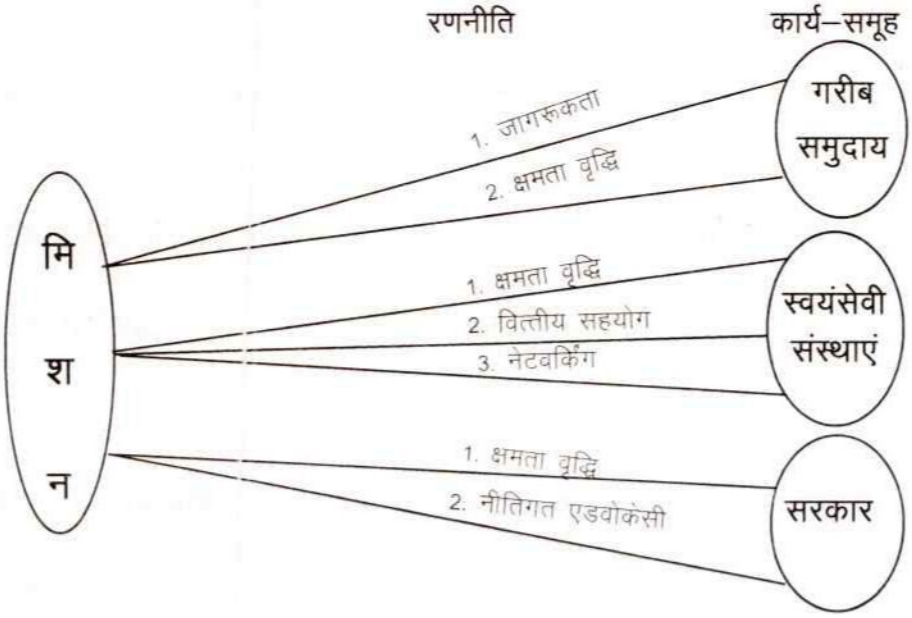

(बहुल कार्य समूह एवं बहुल रणनीति)

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि संस्था छोटी हो या बड़ी, उसकी अपने–अपने कार्य–समूह /लक्ष्य–समूह (consitituency) के संदर्भ में एकल (single) या बहुल (multiple) रणनीति होती है। यह जितनी ज्यादा स्पष्ट होती है तथा संस्था जितनी ज्यादा अपनी रणनीति के प्रति

सचेत होती है, वह संस्था उतनी ही ज्यादा सफल होती है। इस प्रकार कार्यसमूह के हिसाब से रणनीति की निम्न स्थितियाँ हो सकती है :

एकल कार्य समूह (single constituency) एवं एकल रणनीति (single strategy)
जैसा उदाहरण–1 में वर्णित है यानि एक ही कार्य समूह/वर्ग के लिये एक ही रणनीति

एकल कार्य समूह (single constituency) एवं बहुल/जटिल रणनीति (multiple strategies)
जैसा उदाहरण–2 में वर्णित है जिसमें कार्य समूह तो एक ही है पर उसके संदर्भ में बहुत सारी रणनीतियाँ है।

बहुल कार्य समूह (multiple consitituencies) एवं बहुल रणनीति (multiple strategies)
जैसा उदाहरण–3 एवं 4 में वर्णित है जिसमें बहुत सारे कार्यसमूह हैं और प्रत्येक के संदर्भ में बहुत सारी रणनीतियाँ भी है।

3.2 रणनीति के विभिन्न स्वरूप

यह भी समझना आवश्यक है कि रणनीति के कई स्वरूप हो सकते हैं क्योंकि संस्थाओं में कई इकाईयाँ (Units) या केन्द्र हो सकते हैं, कई प्रकार के कार्यक्रम हो सकते हैं तथा कियान्वयन के कई ऐसे अंग हो सकते हैं जिन पर अलग–अलग रणनीति की आवश्यकता हो सकती है। किसी संस्था की रणनीति निम्न अलग–अलग स्तरों पर विकसित की जा सकती है:

सम्पूर्ण संस्था की मुख्य रणनीति : रणनीति का एक आवश्यक स्तर तो यह होता है कि पूरी संस्था के परिप्रेक्ष्य में संस्था के कार्य–समूहों/लक्ष्य समूहों को देखते हुए तथा संस्था के आस–पास के बाहरी वातावरण व आंतरिक क्षमताओं का आकलन करते हुये एक समग्र रणनीति विकसित की जाए। हर संस्था के लिये ऐसी संस्थागत समग्र रणनीति एक मूलभूत जरूरत है ताकि मिशन को प्राप्त करना आसान हो जाए।

अपेक्षाकृत बड़ी संस्थाओं की विभिन्न इकाईयों/केन्द्रों/विभागों/क्षेत्र–कार्यालयों की रणनीति : कई संस्थाएँ इतनी बड़ी हो जाती हैं जिसमें कार्यों का विभाजन करने के लिये विभिन्न इकाईयाँ, केन्द्र अथवा विभाग बनाने की जरूरत पड़ जाती है ताकि काम की स्पष्टता बनी रहे तथा उनकी प्रगति पर निगाह रखना आसान हो। उदाहरणार्थ, यदि कोई सहयोगी संस्था एक तरफ तो पंचायती राज संस्थाओं की क्षमता वृद्धि करती है तो दूसरी तरफ वह छोटी व मध्यम आकार की स्वयंसेवी संस्थाओं की भी क्षमता वृद्धि करती है। दोनों प्रकार के कार्यों को करने तथा उचित मानव–संसाधन प्रबंधन करने के परिप्रेक्ष्य में ऐसी संस्था दोनों कार्यों के लिये अलग–अलग इकाई या विभाग बनाने तथा इन इकाईयों के लिये अलग–अलग रणनीति बनाने का निर्णय ले सकती है। इसी प्रकार यदि संस्था अपने

कार्यालय विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में खोल सकती है तो उनकी भी अलग–अलग रणनीतियॉं विकसित की जा सकती है।

अलग–अलग कार्यक्रमों की रणनीति : संस्थाओं में अलग–अलग कार्यक्रम चल सकते हैं। उदाहरणार्थ, किसी संस्था का कार्य शिक्षा, स्वास्थ्य महिला सशक्तिकरण जैसे मुद्दों पर बंटा हो सकता है। ऐसी स्थिति में संस्था इन प्रत्येक मुद्दों पर या उनके संदर्भ में चल रहे कार्यक्रमों पर अलग–अलग रणनीति विकसित कर सकती है। ध्यान यही रखना पड़ता है कि ये रणनीतियॉं संस्था की मूल रणनीति तथा खासकर, मिशन के अनुरूप हों।

अलग–अलग क्रियात्मक भागों (Functional division) की रणनीतियॉं :
किसी भी संस्था के अन्दर मानव–संसाधन, वित्त–व्यवस्था, सामान की खरीद–फरोख्त, इत्यादि जैसे क्रियात्मक विषय होते हैं जो अपने आप में किसी कार्यक्रम जितने ही महत्वपूर्ण होते हैं। इन विषयों पर भी अलग–अलग रणनीति बनायी जा सकती है या कहे तो अवश्य ही बनायी जानी चाहिये। इन विषयों पर रणनीति के अभाव में सबकुछ अस्थायी तौर पर चलता रहता है और आगे चलकर कई सारी अस्पष्टताओं का सामना संस्था को करना पड़ता है। अतः इन विषयों पर भी रणनीति–निर्माण की संभावना बनती है।

उपरोक्त वर्णित स्वरूपों के अतिरिक्त रणनीति को समय के आधार पर भी दो भागों में विभक्त करके समझा जा सकता है :

दीर्घकालिक रणनीति : इस प्रकार की रणनीति का आशय है वैसी रणनीति जिसे संस्था ने अपने मिशन को प्राप्त करने के सन्दर्भ में आधारभूत रूप से स्वीकार किया है और जो अपेक्षाकृत रूप से जल्दी–जल्दी परिवर्तनशील नहीं है। संस्थागत मूल रणनीतियॉं तुलनात्मक रूप से दीर्घकालिक होती है।

अल्पकालिक रणनीति : कार्यक्रमों, मुद्दों तथा क्रियात्मक विषयों पर संस्थाएँ ऐसी भी रणनीति विकसित करती है जो कम समय के लिये ही होती है। कभी मुद्दे या विषय ही अपेक्षाकृत रूप से अल्पकालिक होते हैं अतः रणनीति भी वैसी ही होती है। पर वह आवश्यक नहीं कि अल्पकालिक विषयों पर ही अल्पकालिक रणनीति होगी। दीर्घकालिक मुद्दों, कार्यक्रमों, विषयों पर भी अल्पकालिक रणनीति हो सकती है। यह भी समझना जरूरी है कि अल्पकालिक रणनीति तथा किसी समस्या के अल्पकालिक उपाय के बीच अंतर होता है। रणनीति किसी तत्काल समस्या का उपाय नहीं है बल्कि पूर्व से निर्धारित मिशन, कार्यक्रम या विषयके सापेक्ष उसे प्राप्त करने की सुनियोजित नीति या निर्णय है।

ऊपर के संपूर्ण विवेचना के बाद यह कहा जा सकता है कि संस्था के कार्यक्षेत्र, कार्य–समूह,

आकार–प्रकार, उम्र, आस–पास के वातावरण तथा आंतरिक क्षमताओं के आधार पर कई स्तरों पर रणनीतियाँ विकसित की जा सकती है जो अल्पकालिक भी हो सकती हैं और दीर्घकालिक भी। सभी स्तरों पर तय की गई रणनीतियाँ कुल मिलाकर संस्था की व्यापक रणनीति का हिस्सा बन जाती हैं और जो संस्था इनके बारे में जितना ही स्पष्ट होती है उतना ही मिशन को प्राप्त करना आसान हो जाता है।

3.3 बेहतर संस्थागत रणनीति कैसे बनायी जाए ?

साधारण शब्दों में, रणनीति का आशय ही है, ऐसी नीति जिसके सहारे लक्ष्य को साधा जा सके। ऐसी नीति तय करना इतना आसान नहीं हो सकता है अन्यथा तो हर नीति ही रणनीति बन जाती। ऐसा सटीक नीति–नियम तय करना संस्था के भीतर विषद् विश्लेषण से ही संभव हो पाता है। मोटे तौर पर बेहतर प्रारम्भिक संस्थागत रणनीति के लिये इन तीनों तत्वों पर गहरा मंथन होना चाहिये :

- संस्था का मिशन तथा मिशन के रास्ते में आने वाली कठिनाईयाँ।
- संस्था का आभामण्डल / हितभागी–विश्लेषण
- संस्था की आंतरिक क्षमताएँ

इन तीनों के विश्लेषण से इन सबके बीच जो नीति फिट बैठती है वहीं सही रणनीति हो सकती है। इसे निम्न रूप से भी समझा जा सकता है :

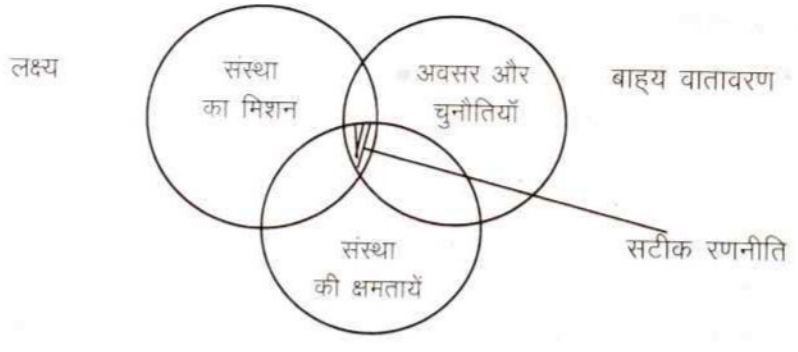

सटीक रणनीति एवं इसके कियान्वयन का चिन्हित क्षेत्र जितना बढ़ता जायेगा, मिशन यानि लक्ष्य उतना ही प्राप्त होता जायेगा। यह क्षेत्र जितना कम होगा, उतना ही लक्ष्य–प्राप्ति कठिन होता जायेगा। संस्था के मिशन के विषय पर इस पुस्तिका में प्रारम्भ में चर्चा की जा चुकी है। अतः आगे रणनीति निर्माण में सहायक अन्य विषयों पर संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक हो जाता है।

3.3.1 संस्था के आभामण्डल का विश्लेषण/हितभागी विश्लेषण

संस्था जब किसी क्षेत्र विशेष में किसी कार्यक्रम के माध्यम से विकासात्मक हस्तक्षेप करती है तो संस्था की उपस्थिति व उसके कार्यक्रमों के संभावित परिणामों के मद्देनजर कई प्रकार के हितभागी या हितभागी समूह बन जाते हैं। हितभागी का आशय है वैसे समूह/वर्ग/व्यक्ति जो संस्था के हस्तक्षेप से सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं या संस्था के कार्यों को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। संस्था के कार्यों के संदर्भ में इनके अपने-अपने हित (Interest) होते हैं जिन पर संस्था के कार्यों का प्रभाव पड़ सकता है और इन्हीं अपेक्षित प्रभावोंके परिप्रेक्ष्य में ये हितभागी संस्था को या तो सहयोग कर सकते हैं या लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में रोड़े अटका सकते हैं। ये हितभागी ही मोटे तौर पर संस्था के आभामण्डल या पूरे परिदृश्य (context) का निर्माण करते हैं। इस आभामण्डल में शामिल प्रत्येक हितभागी की पहचान करना और उनके हित व मांग को समझते हुये उसके सापेक्ष रणनीति तय करना संस्था के लिये आवश्यक हो जाता है। हितभागियों के प्रति अनजान रहना संस्था के लिये खतरनाक हो सकता है क्योंकि नकारात्मक हित देखने वाला कोई हितभागी संस्था को नुकसान पहुँचा सकता है। अतः रणनीति बनाते समय बाह्य वातावरण में मौजूद सभी संभावित हितभागियों का विश्लेषण करना चाहिये।

- हितभागी विश्लेषण के लिये प्रथम चरण तो यह हो सकता है कि हितभागियों को पहचाना जाये। हितभागी वे भी हो सकते हैं जिनके लिये संस्था काम करती है जैसे, गांव के गरीब, गांव की महिलायें, गांव के बच्चे इत्यादि। हितभागी वे भी हो सकते हैं जो उन लोगों से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते हैं जिनके लिये संस्था काम करती है। जैसे, यदि गांव की गरीब महिलायें बचत-समूह के माध्यम से संस्था की सेवाएँ प्राप्त कर रही हैं तो इन महिला-समूहों से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े साहुकार तथा अन्य इकाईयाँ जैसे पंचायत के सदस्य, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता इत्यादि भी हितभागियों में शामिल हो सकते हैं। इसके अलावा दाता संस्थाएँ, सरकार, मीडिया इत्यादि भी हितभागियों में गिने जा सकते हैं। मोटे तौर पर तीन ऐसे क्षेत्र हो सकते हैं जिनके आधार पर हितभागियों को पहचाना जाये – पहला, समस्या, जिसके ऊपर संस्था कार्य कर रही है, से जुड़े वर्ग यथा गांव का गरीब वर्ग, महिलाएँ, पंचायत, अन्य स्वयंसेवी संस्थायें इत्यादि; दूसरा संसाधन जुटाने से जुड़े वर्ग, यथा दानदाता, स्थानीय सरकार के विभाग इत्यादि; तीसरा –सामाजिक राजनैतिक परिवेश से जुड़े वर्ग यथा, राजनीतिक दल, राज्य व देश की सरकार, पुलिस, मीडिया इत्यादि। उदाहरण स्वरूप सरलता से समझने लिये ग्रामीण क्षेत्र में कियान्वयन करने वाली संस्था के आभामण्डल में शामिल हितभागियों में निम्न प्रकार के वर्ग शामिल हो सकते हैं जैसा कि आगे ढांचे में दिखाया गया है।

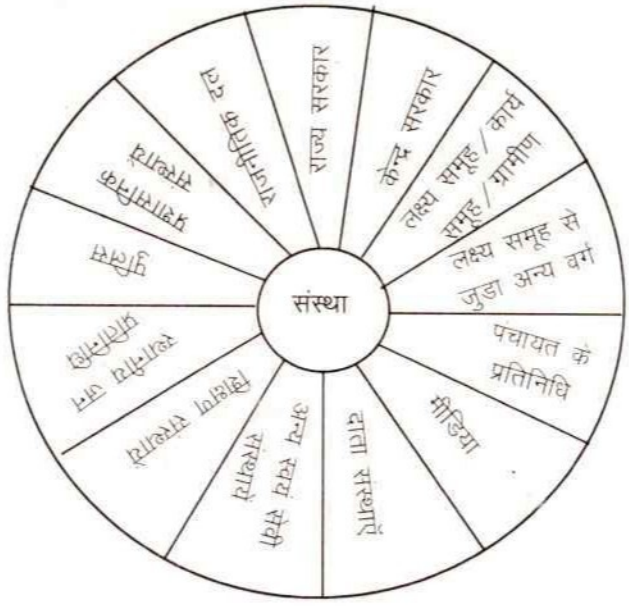

इस ढाँचे की मदद से यह समझा जा सकता है कि हितभागियों का दायरा बहुत व्यापक होता है। अलग–अलग तरह की संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में हितभागियों की संख्या तथा स्वरूप में परिवर्तन होता है क्योंकि हर संस्था के काम करने का अपना अलग संदर्भ (context) होता है। विश्लेषण को उपयोगी बनाने के लिये बड़े हितभागी समूहों के भीतर भी छोटे–छोटे वर्ग या व्यक्ति चिन्हित किए जाने चाहिये। जैसे, लक्ष्य समूह या ग्रामीण समुदाय को हितभागी के रूप में जानना बहुत व्यापक हो जाता है जिसे उपयोगी बनाने के लिये इसके भीतर, गरीब वर्ग, महिलाएँ, दलित वर्ग, भूमिहीन इत्यादि के रूप में इसे पहचानना और इसके संदर्भ में रणनीति तय करना ज्यादा सटीक होता है। इसी प्रकार पंचायत प्रतिनिधि जैसे व्यापक हितभागी समूह के भीतर सरपंच, पंच, कोषाध्यक्ष इत्यादि के रूप में इन्हें पहचानना सटीक रणनीति बनाने में मददगार होगा।

- हितभागी विश्लेषण में अगला सहायक कदम हो सकता है कि हितभागियों को वर्गीकृत कर लिया जाए। वर्गीकरण का आशय है कि कुछ हितभागी प्राथमिक (primary) हितभागी हो सकते हैं तो कुछ द्वितीयक (secondary), कुछ तृतीयक(tertiary) तथा कुछ अन्य हितभागी महज रूचि रखने वाले वर्ग (intereted parties) के रूप में दर्ज हो सकते हैं। प्राथमिक हितभागी वे होते हैं जिनका हित सबसे ज्यादा दाव पर लगा होता है यानि वे वर्ग जिनके लिये कार्यक्रम बने होते हैं और जिसकी सफलता–असफलता से जिनका जीवन सर्वाधिक प्रभावित होता है। मोटे तौर पर समाज के गरीब समुदाय के लोग, गरीब महिलाएँ इत्यादि लक्ष्य–समूह के वर्ग प्राथमिक हितभागी होते हैं। इसके बाद द्वितीयक हितभागी वे वर्ग होते हैं जो लक्ष्य–समूह/कार्य समूह (constituency) में तो सीधे शामिल नहीं होते, पर इसके साथ करीब से जुड़े होते हैं। यथा, गरीब महिलाओं के लक्ष्य–समूह के संदर्भ में अमीर लोग, साहुकार, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, पंचायत–प्रतिनिधि, बैंक कार्य कर रही संस्था इत्यादि द्वितीयक हितभागी के रूप के रूप गिने जा सकते हैं क्योंकि ये किसी न किसी प्रकार से लक्ष्य–समूह के साथ सीधे जुड़े दिखाई पड़ते हैं। तृतीयक हितभागी वे होते हैं जिनका हित सीधा–सीधा न होकर दूरस्थ रूप से जुड़ा होता है। उपरोक्त लक्ष्य–समूह (गरीब महिलाएँ) के संदर्भ में दाता संस्था, केन्द्र सरकार, मीडिया इत्यादि तृतीयक हितभागी के रूप में दर्ज किए जा सकते हैं। इसके अलावा अन्य रूचि रखने

वाले वर्ग भी हो सकते हैं जिनका सीधा हित नहीं होता पर वे मुद्दे में रूचि रखते हैं। उदाहरणार्थ, किसी शैक्षणिक संस्था या विश्वविद्यालय के किसी विभाग की गणना इस प्रकार की रूचि रखने वाले हितभागी के रूप में की जा सकती है जो मुद्दे पर अध्ययन करता हो या संबंधित आंकडों को उपयोगी मानता हो। हितभागियों का वर्गीकरण हमेशा किसी संस्था व उसके कार्यक्रम के संदर्भ में ही होगा तथा अलग–अलग संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में हितभागियों के वर्गीकरण का स्वरूप उस संस्था के अपने विश्लेषण के आधार पर बदल सकता है।

हितभागी विश्लेषण के मुख्य चरण

1. हितभागियों की पहचान
2. हितभागियों का वर्गीकरण (प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक, अन्य)
3. हितभागियों के हित ज्ञात करना (सकारात्मक – नकारात्मक अथवा बाधक–सहायक)
4. हितभागियों का वह मुख्य संसाधन ज्ञात करना जिसे वे संस्था के पक्ष / विपक्ष में लगा सकते हैं।
5. मुद्दे पर हितभागियों के साथ अपनी संस्था की संबधात्मक अवस्था (Position) स्पष्ट करना।
6. हितभागियों का प्रभाव–महत्व (Influence - Importance) ज्ञात करना ।
7. रणनीतिगत निर्णय लेना

- प्रत्येक हितभागी का हित ज्ञात करना अगला कदम है। जिस हितभागी को संस्था व इसके कार्यक्रम का लाभ दिखेगा उसका हित सकारात्मक रूप से प्रभावित होगा तथा वह संस्था के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होगा। जिस हितभागी को संस्था के काम से खतरा महसूस होगा उसका हित नकारात्मक रूप से प्रभावित होगा तथा वह संस्था के लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बनेगा। प्रत्येक हितभागी के संदर्भ में ऐसी पहचान करना संस्था के हित में उपयोगी होता है।

- प्रत्येक हितभागी के संदर्भ में यह भी ज्ञात करना हितभागी विश्लेषण का एक आवश्यक चरण है कि हितभागी के पास ऐसा कौन सा मुख्य साधन व संसाधन है जिसके सहारे वह संस्था के हित को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। उदहरणार्थ, यदि राज्य की सरकार किसी संस्था के परिप्रेक्ष्य में एक हितभागी है तो उसके पास नीति–निर्माण करने का एक ऐसा साधन है जो उस हितभागी की मुख्य ताकत है। यदि ऐसे हितभागी का हित संस्था के लिये सकारात्मक है तो संस्था की लक्ष्य प्राप्ति में आवश्यक होने पर नीतिगत सहयोग प्राप्त हो सकता है।

- प्रत्येक हितभागी के संदर्भ में कार्य के मुद्दे के ऊपर संस्था की संबंधात्मक अवस्था (position) किस प्रकार की है, यह स्पष्ट करना भी एक जरूरी हिस्सा है। उदाहरणार्थ, यदि किसी संस्था के प्राथमिक हितभागियों में से एक हैं गांव की गरीब महिलाएँ, तो इन हितभागियों के साथ संस्था की संबंधात्मक अवस्था पार्टनरशीप या सह संबंधी (collaborative) की कही जा सकती है। दूसरे उदाहरण के तौर पर यदि किसी सहयोगी संस्था (supportive organisation) के हितभागियों में दूसरी अन्य सहयोगी संस्थाओं को शामिल किया गया है तो उसके साथ संस्था के सबंध की व्याख्या एक प्रतियोगी (competitive) के रूप में की जा सकती है।

- हितभागी–विश्लेषण के क्रम में हितभागियों का प्रभाव–महत्व (influence-Importance) विश्लेषित करना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। हितभागी के प्रभाव और महत्व को हमेशा संस्था के मिशन (लक्ष्य) के परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक होगा। महत्व का आशय है लक्ष्य की प्राप्ति के संदर्भ में कोई हितभागी संस्था व इसके कार्यक्रम के लिये कितनी अहमियत रखता है। उदाहरणार्थ, जिन प्रतिभागियों के लिये कार्यक्रम चलाया जा रहा है वे महत्व की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण होंगे जबकि हितभागियों में शामिल शैक्षणिक संस्थाएँ कम महत्व की हो सकती हैं। दूसरी ओर प्रभाव का आशय हितभागी की ताकत से है जिसमें वे अपने संसाधनों के सहारे संस्था के लक्ष्य–प्राप्ति के प्रयास को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। किसी संस्था के लक्ष्य–समूह के रूप में वर्णित हितभागी, जैसे गरीब वर्ग की महिलायें, महत्वपूर्ण हो सकते हैं पर कोई जरूरी नहीं कि ये प्रभावशाली भी हों क्योंकि उनके पास वे संसाधन नहीं जो शायद अन्य हितभागियों, जैसे सरकार या दाता–संस्थाओं के पास हों। अतः प्रभाव–महत्व का आंकलन थोडा पेचीदा हो सकता है, पर रणनीति–निर्माण में सही दिशा की ओर इंगित कर सकता है। एक ढाँचे में रखने पर इस विश्लेषण में सहायता मिल सकती है –:

महत्व (Importance) \ प्रभाव (Influence)	उच्च	निम्न
उच्च	उदाहरणार्थ : दाई • (किसी संस्था के स्वास्थ्य संबंधी हस्तक्षेप में)	उदाहरणार्थ : • गरीब समुदाय • ग्रामीण महिलायें • पंचायत प्रतिनिधि
निम्न	उदाहरणार्थ : • दाता संस्थाएँ • राज्य सरकार • मीडिया • शासन की वैधानिक इकाईयां	उदाहरणार्थ : • अन्य स्वयंसेवी संस्थाएं • समाज–कार्य की शैक्षणिक संस्थाएँ (किसी गैर – शैक्षणिक हस्तक्षेप के परिप्रेक्ष्य में)

उच्च प्रभाव तथा उच्च महत्व रखने वाले हितभागी रणनीतिक हस्तक्षेप के दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। उच्च महत्व किन्तु निम्न प्रभाव रखने वाले हितभागी अक्सर वहीं होते हैं जो संस्था के कार्य–समूह/लक्ष्य–समूह के हिस्से होते हैं और जिनके जीवन में परिवर्तन के लिये ही संस्थाएँ काम करती हैं। अतः इनके संदर्भ में रणनीति इस दिशा में केन्द्रित होती है कि किस प्रकार इन्हें प्रभावी (Influence) भी बनाया जाए ताकि ये अपने जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाली शक्तियों को अपनी स्वयं की सामूहिक ताकत से प्रभावित कर सकें। निम्न महत्व किन्तु उच्च प्रभाव की हितभागियों के साथ रणनीति इस दिशा में केन्द्रित हो सकती है कि किस प्रकार इन्हें संस्था

के पक्ष में किया जाए ताकि इनके प्रभाव का उपयोग लक्ष्य समूह के हित को साधने में किया जा सके। उपरोक्त संपूर्ण हितभागी विश्लेषण की प्रकिया को व्यवहार में उपयोग करते समय निम्नलिखित प्रारूप सहायक सिद्ध हो सकता है :

हितभागी का नाम	हितभागी का हित		संसाधन में योगदान (resource mobilisation)	मुद्दे पर संबंधात्मक अवस्था (position on the issue)
	सकारात्मक (+ve) / सहायक	नकारात्मक (-ve) / बाधक		
(अ) प्राथमिक हितभागी (primary stakeholder) उदाहरणार्थ : 1. गांव के गरीब वर्ग के लोग	सकारात्मक		संख्या बल / मानवीय संसाधन	पार्टनरशीप / सहयोगात्मक (collaborative)
(ब) द्वितीयक हितभागी (secondry stakeholder) 1. ग्राम पंचायत	सकारात्मक		मानव संसधन / वित्त संसाधन	सहयोगात्मक
2. अमीर वर्ग		नकारात्मक	वित्त संसाधन	असहयोगात्मक
3. बैंक	सकारात्मक		वित्त संसाधन / नीति–निर्माण	सहयोगात्मक / प्रतियोगी (competitive)
(स) तृतीयक हितभागी (tertiary stakeholder) 1. दान–दाता संस्था	सकारात्मक		वित्त संसाधन	सहयोगात्मक
(द) अन्य रूचि रखने वाली इकाईयाँ				

इस प्रारूप में विश्लेषण से यह मदद मिल सकती है कि किसके साथ किस प्रकार के संबंधों को बनाया जाए, किन संबंधों को परिवर्तित करने से उनके पास उपलब्ध संसाधनों का लाभ संस्था को मिल पायेगा तथा किन–किन से किस प्रकार की सावधानी बरतने की आवश्यकता होगी।

3.3.2 बाह्य वातावरण का विश्लेषण

संस्था का आभामण्डल और उससे जुड़े हितभागी भी हालांकि बाह्य वातावरण के ही हिस्से हैं पर बाह्य वातावरण (external environment) के विश्लेषण का आशय यहाँ पर यह है कि संस्था के बाहर

के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिदृश्य में यह पता लगाया जाए कि मिशन (लक्ष्य) को प्राप्त करने के संदर्भ में आगे क्या–क्या अवसर (opportunities) उपलब्ध हैं तथा साथ ही साथ किस–किस प्रकार की चुनौतियॉ (threats) खड़ी है। इस प्रकार का विश्लेषण नई संस्थाओं के रणनीति निर्माण में अपेक्षाकृत उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कुछ समय काम करने के बाद नये सिरे से रणनीति को व्यवस्थित करने के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। पर मोटे तौर पर नई संस्थाओं को भी इस दिशा में विचार कर लेने पर सटीक रणनीति बनाने में काफी मदद मिलती है।

बाह्य वातावरण में दो ही मुख्य तत्व ढूँढने होते हैं : अवसर और चुनौतियॉ। अपनी संस्था के मिशन के संदर्भ में यह खोजना एवं विश्लेषित करना होता है कि बाहरी जगत में किस–किस प्रकार की सम्भावनाएँ एवं अवसर हैं जिनका उपयोग संस्था कर सकती है। इन अवसरों के परिप्रेक्ष्य में रणनीति विकसित की जा सकती है। साथ ही संभावित चुनौतियों (threats) का भी विश्लेषण जरूरी है क्योंकि बाह्य जगत में अवसरें हैं तो चुनौतियॉ भी है। पंचायत राज पर काम करने वाली एक ग्रामीण क्षेत्र की कियान्वयन संस्था के संदर्भ में अवसरों के कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं –

– शायद ही कोई प्रतियोगिता है अन्य संस्थाओं की ओर से अतः खुला अवसर है।
– स्थानीय स्वशासन अपेक्षाकृत नया विषय है जिस पर सरकार की नीतियॉ सकारात्मक हैं तथा उसका रूख सहयोगात्मक है।

– प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में इस विषय पर मदद करने के लिये दाता संस्थाएँ तैयार हैं तथा यह विषय उनकी प्रमुखता में शामिल होता जा रहा है।

इसी प्रकार के अन्य अवसर भी देखें जा सकते हैं। उसी संस्था के संदर्भ में बाह्य जगत में कई प्रकार की चुनौतियॉ (threats) भी गिनाई जा सकती है।

उदाहरणार्थ :
– स्थानीय स्वशासन के मुद्दे पर सरकार स्वयं ही एक बड़ी कियान्वयन इकाई है। उसके प्रयासों के समक्ष संस्था को प्रयास को पहचान बनाने की चुनौती है।
– नये विषय पर योग्य कार्यकर्ताओं की उपलब्धता नहीं है।
– व्यक्तिवादी समाज बनने की प्रकिया तेज हो रही है। साथ ही सामाजिक तनाव बढ़ रहा है।
इसी प्रकार की चुनौतियॉ तथा अवसर जो बाह्य वातावरण (external environment) में उपलब्ध है उनका गहराई से विश्लेषण कर उसी संदर्भ में रणनीति बनाना उपयोगी हो सकता है।

3.3.3 संस्था की क्षमताओं एवं कमजोरियों का विश्लेषण

रणनीति बनाने में सिर्फ बाह्य जगत का विश्लेषण ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि संस्था के भीतर की

स्थितियॉ भी इस रणनीति को प्रभावित करती है। नई संस्थाओं के संदर्भ में तो अक्सर यही देखा जाता है कि शुरूआत में संस्था–प्रमुख तथा जुडे साथियों का जिस विषय पर समझ, क्षमता व अनुभव होता है, वही काम करने का मुख्य मुद्दा बन जाता है और उसी के संदर्भ में प्रारम्भिक रणनीति विकसित की जाती है। जैसे–जैसे संस्था विकसित होती है, काम का नये सिरे से अनुभव प्राप्त करती है, वैसे–वैसे संस्था का आंतरिक विश्लेषण नई रणनीति के संदर्भ में उपयोगी होता जाता है।

संस्था के आंतरिक विश्लेषण में भी दो मुख्य तत्व ढूँढने आवश्यक हैं : ताकतें (strength) तथा कमजोरियॉ (weaknesses) । संस्था कई मामलों में ताकतवर होती है तो कई मामलों में उसकी कमजोरियॉ साफ झलकती हैं। संस्था को अपनी हर प्रकार की ताकतों एवं कमजोरियों को पहचानना पड़ता है ताकि रणनीति बनाकर ताकतों का उपयोग लक्ष्य प्राप्ति में किया जा सके तथा कमजोरियों को दूर करने की रणनीति भी विकसित की जा सके। किसी संस्था में उसकी ताकतों के निम्न उदाहरण हो सकते हैं –

- समर्थ नेतृत्व
- सक्षम कार्यकर्ता
- संस्था में खुला वातावरण जिसमें मन की बात की जा सकती है
- आवश्यक वित्तीय संसाधन उपलब्ध
- समुदाय में बेहतर संपर्क एवं पहचान
- सरकार के साथ मजबूत संबंध, इत्यादि।

उसी संस्था की कमजोरियों के भी निम्न उदाहरण, उदाहरण के तौर पर, हो सकते हैं :

- वित्तीय एवं प्रशासकीय नियमों का अति अनौपचारिक स्वरूप
- क्षेत्र के अनुभवों को वितरित करने की प्रक्रिया का अभाव
- वार्षिक तथा छमाही में कार्यों के नियोजन की प्रक्रिया कमजोर
- नए कार्यकर्ताओं की भर्ती का औपचारिक नियम नहीं, इत्यादि।

इस प्रकार से संस्था की प्रत्येक ताकतों एवं कमजोरी का पता सभी संबंधित कार्यकर्ताओं के साथ बैठकर लगाना उपयोगी होता है। इन ताकतों एवं कमजोरियों के सापेक्ष ही रणनीति विकसित होती है। ताकत (strength)–कमजोरी (weaknesses) यानि संस्था की आंतरिक स्थिति तथा अवसरों (opportunities)–चुनौतियों (threats) यानि बाह्य–वातावरण के आंकलन को मिलाकर जो विश्लेषण की प्रक्रिया है उसे आमतौर पर SWOT (स्वॉट) विश्लेषण की संज्ञा दी जाती है।

वैसी स्थिति जिसमें अवसर उपलब्ध हों तथा जिसमें संस्था की ताकत भी हो, वहां उस अवसर का लाभ उठाने की रणनीति बन सकती है। वैसी स्थिति जिसमें सामने अवसर तो हैं पर उन विषयों पर संस्था

की कमजोरी दिख रही है तो उन कमजोरियों को दूर करके अवसर का फायदा लेने की रणनीति विकसित की जा सकती है। वैसी स्थिति जिसमें सामने चुनौतियॉं (threats) हैं पर संस्था में उसके सापेक्ष ताकत उपलब्ध हैं तो उन चुनौतियों का अपनी ताकत से मुकाबला करने की रणनीति बन सकती है। पर एक स्थिति ऐसी भी हो सकती है जो संस्था के लिये सबसे ज्यादा ध्यान देने का मुद्दा हो सकती है वह तब बनती है जब संस्था के सामने चुनौतियां भी हैं और उसके संदर्भ में संस्था के भीतर कमजोरियां भी हैं। यह संस्था के लिये सबसे कमजोर पक्ष हो सकता है जिस पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाने की जरूरत है। उदाहरण के लिये, यदि बाह्य वातावरण में यह चुनौतिपूर्ण विश्लेषण सामने आता है कि दाता संस्थाओं एवं सरकारी एजेंसियों का ध्यान सबसे ज्यादा इस बात पर बढ़ गया है कि स्वयंसेवी संस्थाओं का वित्तीय–प्रबंधन कैसा है और इस चुनौति के सापेक्ष आन्तरिक कमजोरियों में यह निकालकर आता है कि संस्था की वित्तीय प्रकियाऐं अनौपचारिक बनी हुई है तो रणनीतिक दृष्टिकोण से यह पक्ष संस्था के लिये सर्वाधिक ध्यान दिये जाने का मुद्दा बन जाता है। संस्था की रणनीति ऐसे पक्षों पर ज्यादा केन्द्रित हो सकती है।

इस विश्लेषण में इस फ्रेमवर्क का उपयोग करना उपयोगी होगा :

	ताकत (strength)	कमजोरी (weakness)
अवसर (opportunity)	1. जिन ताकतों से हम अवसरों का लाभ उठा सकते हैं	2. जिन कमजोरियों की वजह से हम अवसरों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।
खतरे / चुनौतियॉं (threats)	3. जिन ताकतों से हम खतरों का सामना कर सकते हैं।	4. जो कमजोरियॉं हमारे खतरों को और बढा सकती हैं।

इस फ्रेमवर्क में अपनी ताकत–कमजोरियों तथा वातावरण के अवसरों–खतरों को डालकर यह विश्लेषित किया जा सकता है कि किस प्रकार की रणनीतियॉं को विकसित किया जाए ताकि अवसरों का लाभ संस्था के मिशन को प्राप्त करने में उठाया जा सके तथा कमजोरियों को ताकत के रूप में परिणत किया जा सके।

3.4 रणनीतिक नियोजन

इस लघु पुस्तिका का प्रयोजन संस्था के विजन–मिशन तथा प्रारम्भिक रणनीति के अर्थ, उपयोग एवं उनके निर्माण के तरीके को समझने पर केन्द्रित रहा है। रणनीति नियोजन (strategic planning) एक प्रकार से थोड़ी बाद की जरूरत है जब संस्था कुछ समय काम करने के बाद अपनी प्रारम्भिक रणनीति

पर पुनर्विचार करने की जरूरत समझती है। नई छोटी संस्था जब बनती है तो उस समय थोड़े लोगों, संसाधनों, अनुभवों तथा सीमित भौगोलिक क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में एक सीमित प्रारम्भिक रणनीति के तहत कुछ समय तक कार्य करती है। जैसे–जैसे उसका विकास होता है, उसके सामने नई चुनौतियां आती है, संसाधन बढने लगते हैं, ज्यादा लोग जुड़ने लगते हैं तो उसके सापेक्ष उसे अपने आप में समसामयिक बदलाव की जरूरत पडती है। रणनीतिक नियोजन की प्रकिया इसी समय प्रासंगिक हो जाती है। संस्था के नए भविष्य का अनुमान लगाकर उसके संदर्भ में नियोजन करना ही राजनीतिक नियोजन है। मोटे तौर पर निम्न स्थितियों में रणनीतिक नियोजन की जरूरत पड़ती है :

- संस्था के विजन–मिशन के पुनर्विश्लेषण एवं प्रासंगिकता पर विचार
- बदलते बाह्य वातावरण/परिप्रेक्ष्य में सामंजस्य बिठाने हेतु
- संस्था में स्थायित्व निर्मित करने के संदर्भ में
- संस्था के विकास/विस्तार को दिशा देने हेतु
- संस्था में उत्पन्न जड़त्व को दूर करने हेतु

उपरोक्त स्थितियों में तथा अन्य आवश्यक दिशाओं को तय करने हेतु स्वयंसेवी संस्थाएँ रणनीति नियोजन करती है। जो संस्था अपने मिशन को प्राप्त करने के लिये जितनी तत्परता से आत्म–मूल्यांकन करते हुये अपने भविष्य की दिशा तय करती है, वह उतना ही प्रासंगिक बनी रहती है। अन्य संस्थाएँ, जितनी रणीनतिक सोच तय नहीं है, वे असमय अपनी उपयोगिता खो देती है।

रणनीतिक नियोजन की प्रकिया में हितभागी विश्लेषण, बाह्य वातावरण में अवसर एवं चुनौतियों की पहचान तथा संस्था की आंतरिक क्षमताओं एव कमजोरियों का गहरा विश्लेषण आवश्यक है। इस विश्लेषण के उपरांत रणनीतिक मुद्दों की पहचान की जाती है जिनके सापेक्ष वैकल्पिक रणनीतियों का चयन करना पड़ता है। उदाहरण के लिये संस्था के विस्तार के परिप्रेक्ष्य में निम्न तरह के रणनीतिक विकल्पों के बीच से चयन करना पड़ सकता है :

1. छोटे क्षेत्र में सघन काम बनाम बड़े क्षेत्र में असघन काम
2. विभिन्न प्रकार के मुद्दे/क्षेत्र(Multipale sector) बनाम् सीमित मुद्दे/क्षेत्र (Limited sector)
3. एक प्रकार का काम (Single function) बनाम विभिन्न काम (Multiple function)
(उदाहरण : प्रशिक्षण या कियान्वयन या एडवोकेसी या नेटवर्किंग) (कियान्वयन+एडवोकेसी+प्रशिक्षण)
4. एक स्थान पर (Single location) बनाम् विभिन्न स्थानों पर (Multi-location)
5. एक लक्ष्य समूह(Single constituency) बनाम् बहुल लक्ष्य–समूह (Multiple constituency)
6. स्वायत्तता (Autonomous) बनाम् सह–संबंधी (Collaborative)
7. विदेशी–दाताओं पर निर्भरता बनाम् स्थानीय कोष पर निर्भरता
8. कियान्वयन–संस्था की पहचान बनाम् सहयोगी संस्था की पहचान
9. परिवर्तन उन्मुखी संस्था (Agent of change) बनाम् सेवादाता संस्था (Delivery of programme)

ये कुछ सामान्य मुद्दे हैं जिसके परिप्रेक्ष्य में संस्थाओं के सामने रणनीतिक चयन (Strategic choices) की नौबत आती है। इसके अलावा भी संस्थाएँ जब समय–समय पर अपना संस्थागत मूल्यांकन करती है तो बहुत तरह की रणनीति मुद्दे उभरकर सामने आते हैं जिन पर आगे बढ़ने के लिये बहुत सारे रास्तों में से किसी विशिष्ट रास्ते का चयन संस्था को करना पड़ता है।

कुल मिलाकर रणनीति तथा रणनीतिक नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जो स्थायी नहीं है बल्कि समय हालात को देखते हुये परिवर्तित होती रहती है। जो संस्थाएँ अपनी प्रासंगिकता बनाए रखना चाहती हैं, वे इन हालातों को समझते हुये एवं अपने भविष्य का अनुमान लगाते हुये अपनी रणनीति विकसित करते रहती है।

हमारे बारे में ...

समर्थन एक स्वैच्छिक व गैर सरकारी संगठन है जो मध्यप्रदेश में एक स्वैच्छिक प्रयासों के लिए सहयोगी संस्था के रुप में कार्यरत है। समर्थन प्रमुख रूप से विकास के क्षेत्र में प्रशिक्षण तथा क्षमतावृद्धि के लिए प्रयासरत है। यह संगठन प्रशिक्षण, सूचनाओं तथा जानकारियों का आदान प्रदान, शोध एवं विचार विमर्श के माध्यम से स्वैच्छिक संस्थाओं को सहयोग प्रदान करता है।

विकास की प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता बढ़ाना ही समर्थन का मुख्य उद्देश्य है। इसके द्वारा दिया जाने वाला सहयोग जो प्रशिक्षण, शैक्षणिक सामग्री एव शोध के रूप में होता है, संस्थाओं एवं समुदायों की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। समर्थन, प्रमुख रूप से छोटी–छोटी संस्थाओं के साथ मिलकर कार्य करने का प्रयास कर रहा है। समर्थन की मान्यता है कि स्वैच्छिक संस्थाओं की क्षमता वृद्धि से विकास की प्रक्रिया को गति मिलेगी और स्वैच्छिक प्रयास में वे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

वर्तमान में समर्थन कुछ चुनी हुई स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर स्वशासन एवं पंचायती राज व ग्राम स्वराज व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए ग्राम सभाओं को प्रभावी बनाने में प्रयासरत है। हमारा लक्ष्य है कि जागरुक ग्राम सभाएं सक्रिय पंचायतों का गठन करें, जो अपने क्षेत्र के विकास में नए उदाहरण प्रस्तुत कर सकें।

हमारा पता है :–

समर्थन सेन्टर फॉर डेवलपमेन्ट सपोर्ट
ई–7/ 81, (बैंकर्स कॉलोनी), अरेरा कॉलोनी
भोपाल – 462016
फोन : (0755) 2467625, 5293147
फैक्स : (0755) 2468663
ई–मेल : samarth_bpl@sancharnet.in

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स फोन नं. 2533689